इकाई 8 : ध्वनि संरचना : हिंदी की समस्याएँ

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 ध्वनिविज्ञान
8.2.1 स्वर तथा व्यंजन ध्वनियाँ
8.2.2 हिंदी की स्वर ध्वनियाँ तथा उनका वर्गीकरण
8.2.3 हिंदी की व्यंजन ध्वनियाँ तथा उनका वर्गीकरण
8.2.4 हिंदी की आगत ध्वनियाँ
8.2.5 हिंदी की नव विकसित ध्वनियाँ
8.3 खंडेतर ध्वनियाँ
8.3.1 अक्षर तथा आक्षरिक संरचना
8.3.2 बल तथा बलाघात
8.3.3 सुर, तान तथा अनुतान
8.3.4 दीर्घता
8.3.5 अनुनासिकता
8.3.6 संहिता या संगम
8.4 स्वनिम विज्ञान तथा निष्पादक स्वनिम विज्ञान
8.4.1 स्वनिम विज्ञान : सैद्धांतिक पृष्ठभूमि
8.4.2 निष्पादक व्याकरण तथा स्वनिम विज्ञान
8.4.3 अभिव्यक्ति के विभिन्न स्तर तथा निष्पादक स्वनिम विज्ञान
8.4.4 निष्पादक स्वनिम विज्ञान तथा प्रभेदक अभिलक्षण
8.4.5 द्विचर अभिलक्षण
8.4.6 स्वनिमिक नियम तथा उनकी लेखन-विधि
8.5 हिंदी की स्वनिमिक समस्याएँ
8.5.1 अ-लोप की समस्या
8.5.2 उत्क्षिप्त ध्वनियों ड़/ढ़ की समस्या
8.5.3 नासिक्य ध्वनियों की समस्या
8.5.4 महाप्राण ध्वनियों की समस्या
8.6 सारांश
8.7 अभ्यास प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- स्वर तथा व्यंजन ध्वनियों का अंतर समझ सकेंगे,
- हिंदी के स्वर तथा व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण कर सकेंगे,
- हिंदी की खंडेतर ध्वनियों की प्रकृति से परिचित हो सकेंगे,
- स्वन, स्वनिम एवं संस्वन की संकल्पना को समझा सकेंगे,
- निष्पादक स्वनिम विज्ञान की आधारभूत अवधारणाओं से परिचित हो सकेंगे।
- अभिलक्षणों की संकल्पना से परिचित हो सकेंगे, और
- हिंदी की स्वनिमिक समस्याओं को समझ सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है हिंदी भाषा की ध्वनि व्यवस्था से परिचय प्राप्ता कराना। इसी व्यवस्था के अंतर्गत आपको इस इकाई में हिंदी के स्वर, व्यंजन ध्वनियों का संक्षिप्त परिचय दिया जाएगा तथा खंडेतर ध्वनियों का परिचय दिया जाएगा।

इसके अतिरिक्त आपको निष्पादक स्वनिम विज्ञान की आधारभूत संकल्पनाओं से परिचित कराते हुए निष्पादक स्वनिम विज्ञान में स्वनिम की अवधारणा क्या है इसे भी बताया जाएगा। इसके अतिरिक्त इकाई के अंतिम भाग में आपको हिंदी की प्रमुख स्वनिमिक समस्याओं के विषय में विस्तार से जानकारी दी जाएगी।

8.2 ध्वनिविज्ञान

10.2.1 स्वर तथा व्यंजन ध्वनियाँ

'स्वर' वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में वायु मुख से बिना किसी अवरोध के बाहर निकल जाती है। हिंदी में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ स्वर ध्वनियाँ हैं।

'व्यंजन' ध्वनियों के उच्चारण में उच्चारण अवयवों (जीभ अथव निचला ओष्ठ) के द्वारा मुख के ऊपरी जबड़े में विभिन्न स्थानों पर वायु का मार्ग अवरुद्ध किया जाता है। हिंदी में क से लेकर ह तक सभी व्यंजन ध्वनियाँ हैं। अवरोध के प्रकार के आधार पर व्यंजनों के अनेक भेद (प्रकार) होते हैं।

10.2.2 हिंदी की स्वर ध्वनियाँ तथा उनका वर्गीकरण

हिंदी स्वरों का वर्गीकरण निम्नलिखित आधारों पर किया जाता है :

(i) **जीभ का कौन-सा भाग उच्चारण में भाग ले रहा है**

स्वरों के उच्चारण में जीभ का अग्र, मध्य और पश्च भाग ऊपर-नीचे उठता है। इस आधार पर स्वरों के तीन भेद हो जाते हैं :

(क) अग्र स्वर - ई, ई, ए, ऐ, ऍ

(ख) मध्य स्वर - अ

(ग) पश्च स्वर - उ, ऊ, ओ, औ, ऑ

(ii) **मुँह किस मात्रा में खुलता तथा बंद होता है**

मुँह के खुलने तथा बंद होने की मात्रा के अनुसार स्वरों के निम्नलिखित भेद हो जाते हैं :

(क) संवृत : मुँह प्रायः बंद या बहुत कम खुलता हो - इ, ई, उ, ऊ

(ख) विवृत : सबसे अधिक खुला हुआ हो - आ

(ग) अर्ध संवृत : 'संवृत' स्थिति की तुलना में अधिक खुलता हो – ए ओ

(घ) अर्ध-विवृत : 'विवृत' स्थिति की तुलना में कम खुलता हो – ऐ, औ

(iii) **ओठों की गोलाकार/अगोलाकार स्थिति के आधार पर**

जिन स्वरों को उच्चारण में ओठ गोल हो जाते हैं उन्हें वृत्ताकार तथा जिनमें चपटे रहते हौं 'अवृत्ताकार' स्वर कहे जाते हैं :

वृत्ताकार - उ, ऊ, ओ, औ, ऑ

अवृत्ताकार - अ, आ, इ, ई, ए, ऐ, ऍ

हिंदी के उपर्युक्त सभी स्वरों का वर्गीकरण निम्नलिखित आरेख से समझा जा सकता है :

	अग्र स्वर		मध्य स्वर	पश्च स्वर	
संवृत	ई	इ		उ	ऊ
अर्ध-संवृत		ए			ओ
अर्ध-विवृत		ऍ	अ		ऑ
विवृत				आ	

→ अवृत्ताकार ← → वृत्ताकार ←

10.2.3 हिंदी की व्यंजन ध्वनियाँ तथा उनका वर्गीकरण

सभी व्यंजन अवरोधी ध्वनियाँ हैं। व्यंजनों का वर्गीकरण दो आधारों पर किया जाता है – अवरोध किस स्थान पर होता है और अवरोध उत्पन्न करने वाला अंग किस तरह का प्रयत्न करता है।

स्थान या **उच्चारण स्थान** से तात्पर्य ऊपरी जबड़े के उन स्थानों से है जहाँ उच्चारण अवयव (जीभ या निचला ओंठ) ऊपर जाकर फेफड़ों से आने वाली वायु का अवरोध करते हैं। इस दृष्टि से ऊपरी ओठ, ऊपरी दाँत, वर्त्स या दन्तमूल, कठोर तालु, मूर्धा, कोमल तालु या कंठ तथा स्वर यंत्र प्रमख उच्चारण स्थान हैं। ऊपरी ओठ तथा ऊपरी दाँत वे स्थान हैं जहाँ निचले ओठ द्वारा अवरोध उत्पन्न किया जाता है जबकि शेष स्थानों पर जिह्वा द्वारा अवरोध किया जाता है। इस अवरोध की प्रक्रिया में जिह्वा की नोक, जिह्वा का अग्र, मध्य तथा पश्च भाग हिस्सा ले सकते हैं।

1. **हिंदी व्यंजनों का स्थान के आधार पर वर्गीकरण**

कंठ्य या कोमल तालव्य	- क, ख, ग, घ, ङ.
तालव्य	- च, छ, ज, झ, ञ
मूर्धन्य	- ट, ठ, ड, ढ, ण, ड़, ढ़, ष
दन्त्य	- त, थ, द, ध, न
वर्त्स्य	- स, ज़, र, ल
ओष्ठ्य	- प, फ, ब, भ, म
दन्त्योष्ठ्य	- व, फ़
स्वर तंत्रीय	- ह

2. **हिंदी व्यंजनों का प्रयत्न के आधार पर वर्गीकरण**

प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों के वर्गीकरण के निम्नलिखित आधार हैं :

(क) **अवरोध की प्रकृति के आधार पर**

स्पर्शी : जब उच्चारण अवयव उच्चारण स्थान का स्पर्श करके वायु का मार्ग अवरुद्ध करता है तब जो व्यंजन उच्चरित होते हैं, **स्पर्शी व्यंजन** कहे जाते हैं। हिंदी में क-वर्ग, ट-वर्ग, त-वर्ग तथा प-वर्ग के पहले चार व्यंजन स्पर्शी व्यंजन हैं।

संघर्षी : कुछ व्यंजनों के उच्चारण में उच्चारण अवयव इतना ऊपर नहीं उठते कि वे उच्चारण स्थान का स्पर्श कर सकें। वे उनके इतने निकट आ जाते हैं कि वायु दोनों के बीच से घर्षण करती हुई निकलती है। ऐसे व्यंजन **संघर्षी व्यंजन** कहे जाते हैं। हिंदी में स, श, ष, ह तथा आगत व्यंजन ख़, ग़, ज़ तथा फ़ संघर्षी व्यंजन हैं।

स्पर्श संघर्षी : जिन व्यंजनों के उच्चारण में स्पर्श तथा घर्षण दोनों प्रयत्न होते हैं, **स्पर्श संघर्षी** व्यंजन कहे जाते हैं। उच्चारण अवयव उच्चारण स्थान को स्पर्श करने के बाद इतने निकट रह जाते हैं कि वायु घर्षण करती हुई ही बाहर निकलती है। हिंदी में च-वर्ग के सभी व्यंजन इसी कोटि में आते हैं।

अंतःस्थ : इस कोटि में **अर्ध-स्वर**, **लुंठित** तथा **पार्श्विक** व्यंजन आते हैं :

अर्ध-स्वर : इनके उच्चारण में जीभ स्वरों की तुलना में अधिक ऊपर उठती है पर इतना ऊपर नहीं जाती कि वायु का मार्ग अवरुद्ध हो सके। हिंदी के 'य' तथा 'व' व्यंजन अर्ध-स्वर हैं।

लुंठित : जब जीभ की नोक मुख के मध्य भाग में आकर बार-बार आगे पीछे गिरती है तो इस प्रकार उच्चरित व्यंजन लुंठित कहे जाते हैं। हिंदी में 'र' व्यंजन लुंठित ध्वनि का उदाहरण है।

पार्श्विक : यहाँ भी जीभ की नोक मुख के बीच में आकर एक ओर या दोनों ओर पार्श्व (खिड़की) बनाती है और वायु इन्हीं पार्श्व से होकर बाहर निकलती है। हिंदी की 'ल' ध्वनि इसका उदाहरण है।

उत्क्षिप्त : उत्क्षिप्त व्यंजनों के उच्चारण में जीभ ऊपर उठकर पहले मूर्धा को स्पर्श करती है और फिर तुरंत झटके से नीचे गिरती है। हिंदी के 'ड़' तथा 'ढ़' व्यंजन इसके उदाहरण हैं।

(ख) **स्वर तंत्रियों के कंपन के आधार पर**

सघोष तथा अघोष व्यंजन : हम सबके गले में स्वरतंत्रियाँ होती हैं। जब फेफड़ों से निकलकर आने वाली वायु इनसे टकराती है तो ये झंकृत हो जाती है और इनमें कंपन उत्पन्न हो जाता है। कंपन के फलस्वरूप कभी ये परस्पर निकट आ जाती हैं तो कभी दूर हो जाती हैं। जिस समय ये निकट होती हैं उस समय इनकी झंकार की अनुगूँज (घोष) भी मुख तक जाने वाली वायु में सम्मिलित हो जाती है। इस समय जो व्यंजन उच्चरित होते हैं उन्हें **सघोष-व्यंजन** कहा जाता है। **अघोष व्यंजनों** में स्वर तंत्रियाँ परस्पर दूर रहती हैं अतः उनकी अनुगूँज शामिल नहीं हो पाती। हिंदी में वर्ग के प्रथम दो व्यंजन अघोष हैं और शेष तीनों सघोष :

अषोघ : क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ

सघोष : ग घ ङ., ज झ ञ, ड ढ ण, द ध न, ब भ म

(ग) **श्वास की मात्रा के आधार पर**

अल्प प्राण तथा महाप्राण : जिन व्यंजनों के उच्चारण में मुख से कम मात्रा में श्वास निकलती है अल्पप्राण तथा जिनमें अधिक मात्रा में निकलती है महाप्राण व्यंजन कहे जाते हैं। हिंदी में वर्ग के प्रथम तथा तृतीय अल्पप्राण तथा द्वितीय एवं चतुर्थ व्यंजन महाप्राण हैं :

अल्पप्राण : क ग, च ज, ट ड, त द, प ब

महाप्राण : ख घ, छ झ, ठ ढ, थ ध, फ भ

10.2.4 हिंदी की आगत ध्वनियाँ

जो ध्वनियाँ किसी दूसरी भाषा के शब्दों के आ जाने के कारण आ जाती हैं, **आगत ध्वनियाँ** कही जाती हैं तथा उन शब्दों को आगत शब्द कहते हैं। हिंदी में भी अरबी, फ़ारसी, तुर्की, अंग्रज़ी तथा अनेक योरोपीय भाषा के शब्द आ गए हैं। इन शब्दों के माध्यम से ऐसी ध्वनियाँ भी हिंदी में आ गई हैं जो हिंदी में नहीं थीं। आज ये आगत-शब्द हिंदी में इस कदर घुल-मिल गए हैं कि किसी को यह अहसास भी नहीं होता कि ये किसी दूसरी भाषा से आये हैं। हिंदी में इन **आगत ध्वनियों** के लिए नए वर्ण भी विकसित कर लिए गए हैं। ये इस प्रकार हैं :

आगत स्वर	उदाहरण
ऍ	कैप, मैप, पैन आदि
ऑ	कॉफी, टॉफ़ी, शॉप, बॉल

यद्यपि मानक वर्तनी में 'ऍ' को नहीं लिया गया है। परंतु यदि इसको भी ले लिया जाए तो हम अनेक आगत-शब्दों का जिनमें 'ऍ' स्वर उच्चरित होता है, सही उच्चारण कर सकते हैं।

आगत-व्यंजन : आगत व्यंजनों के लिए वर्णमाला में परंपरागत वर्णों के नीचे बिंदी लगाकर चिह्न विकसित किए गए हैं। ये वर्ण हैं - क़, ख़, ग़, ज़ तथा फ़।

जहाँ तक उच्चारण का प्रश्न है प्रायः हिंदी भाषा भाषी ज़, फ़ की तुलना में क़, ख़ तथा ग़ का उच्चारण नहीं करता या बहुत कम करता है। फिर भी इन ध्वनियों का महत्व तब अधिक हो जाता है जब हिंदी की निकटवर्ती ध्वनि किसी शब्द में इनके व्यतिरेक में आ जाती है जैसेः

ताक (ताकना)	खाना (भोजन)	सजा (सजाना)
ताक़ (दीवार का आला)	ख़ाना (अलमारी का खाना)	सज़ा (दंड)
बाग (घोड़े की)	फन (साँप का)	जरा (बुढ़ापा)
बाग़ (बगिया)	फ़न (हुनर)	ज़रा (थोड़ा)

10.2.5 हिंदी की नव विकसित ध्वनियाँ

हिंदी में कुछ ऐसी ध्वनियाँ भी हैं जो संस्कृत में नहीं थीं। ये किसी अन्य भाषा के प्रभाव से न आकर स्वतः विकसित हुई हैं। ये हिंदी के संरचनात्मक विकास का परिणाम है। ये हैं :

ड़, ढ़ न्ह, म्ह तथा ल्ह तथा अनुनासिक स्वर

इनमें 'ड़/ढ़' क्रमशः 'ड/ढ' से विकसित व्यंजन हैं। 'ड/ढ' व्यंजन जब दो स्वरों के मध्य में या शब्दांत में आ जाते हैं तो इनका उच्चारण क्रमशः ड़/ढ़ हो जाता है। इस इकाई के अंतिम खंड में इस पर विस्तार से चर्चा की जाएगी।

जहाँ तक 'ल्ह', 'म्ह' तथा 'न्ह' व्यंजनों के विकास का प्रश्न है ये क्रमशः ल, म तथा न के महाप्राण रूप में विकसित हुए हैं जैसे :

काना - कान्हा
कुमार - कुम्हार
आला - आल्हा

परंतु अभी तक इनके लिए स्वतंत्र वर्ण नहीं विकसित किए गए।

अनुनासिक स्वर : हिंदी में अनुनासिकता के कारण सभी स्वर अनुनासिक हो जाते हैं ये अर्थ व्यतिरेक में अर्थ परिवर्तन की क्षमता रखते हैं जैसे - गोद-गोंद, भाग-भाँग आदि। इनके लिए लेखन में बिंदु तथा चंद्रबिंदु (ँ) दोनों का ही प्रयोग किया जाता है।

खंडेतर ध्वनियों के प्रसंग में 10.3.5 के अंतर्गत अनुनासिकता पर विस्तार से चर्चा की जाएगी।

8.3 खंडेतर ध्वनियाँ

ऊपर अभी तक जिन ध्वनियों (स्वर तथा व्यंजनों) की चर्चा की गई वे सभी **खंडीय ध्वनियाँ** कही जाती हैं क्योंकि उन ध्वनियों के उनके ध्वनि गुणों - नासिक्य/निरनुनासिक, प्राणत्व, घोषत्व के आधार पर खंड किए जा सकते हैं, परंतु कुछ ऐसी ध्वनियाँ भी होती हैं जिनके खंड करना संभव नहीं होता। ऐसी ध्वनियों को खंडेतर ध्वनियाँ कहा जाता है। बलाघत, अनुतान, अनुनासिकता, मात्रा, संहिता आदि ऐसी ही खंडेतर ध्वनियाँ हैं। खंडेतर ध्वनियों की संकल्पना समझने से पहले **'अक्षर'** की संकल्पना भी समझना आवश्यक है। आइए इन सब पर विस्तार से विचार करें।

10.3.1 अक्षर तथा आक्षरिक संरचना

यह तो आप जानते ही हैं कि जब हम साँस लेते हैं तो वायु हमारे फेफड़ों में जाती है जिसके परिणामस्वरूप फेफड़े फूलते तथा सिकुड़ते हैं। फेफड़ों के फूलने तथा सिकुड़ने को 'हृत्-स्पंद' कहा जाता है।

एक 'हृत्-स्पन्द' (फेफड़ों का एक बार फूलना तथा सिकुड़ना) में कभी तो केवल एक स्वर का ही उच्चारण किया जाता है जैसे आ, ए, ओ आदि और कभी एक से अधिक ध्वनियों जैसे - आज, जा, लोग, उम्र, प्राण का भी उच्चारण किया जाता है। इस प्रकार एक 'हृत्-स्पंद' में जितनी भी ध्वनियाँ एक साथ उच्चरित होती हैं वे सब परस्पर मिलकर एक 'अक्षर' (syllable) का निर्माण करती हैं।

यदि एक 'हृत्-स्पंद' में केवल एक ही ध्वनि उच्चरित की जाती है तो वह निश्चित ही 'स्वर' होती है, एकाधिक ध्वनियों में स्वर के पहले, बाद में या पहले तथा बाद में व्यंजन ध्वनियाँ भी आ सकती हैं। यदि किसी शब्द में दो स्वर उच्चरित होते हैं तो उसमें दो अक्षर होते हैं जैसे - आओ, आई आदि क्योंकि इनका उच्चारण दो 'हृत्-स्पंदों" के द्वारा होता है। अतः ध्यान रखिए जिस शब्द में जितने स्वर होंगे वह शब्द उतने ही अक्षरों से बना होगा।

आक्षरिक संरचना

'अक्षर' की संरचना बिना स्वर के नहीं हो सकती। अक्षर की संरचना में 'स्वर' का स्थान प्रमुख होता है। जब हम किसी शब्द का उच्चारण करते हैं तो 'स्वर' ही अधिक मुखरित रूप में सुनाई देता है इसीलिए वह अक्षर का **केंद्रक** (nucleus) कहलाता है। इसे **शीर्ष** (peak) भी कहते हैं।

यदि किसी अक्षर में स्वर के पहले तथा बाद में व्यंजन भी आ रहे हैं तो स्वर के पूर्ववर्ती व्यंजनों को 'पूर्व-गह्वर' (onset) तथा परवर्ती स्वरों को 'पर गह्वर' (coda) कहा जाता है। उदाहरण के लिए - 'नाम' तथा 'प्रश्न' शब्दों की आक्षरिक संरचना इस प्रकार की होगी :

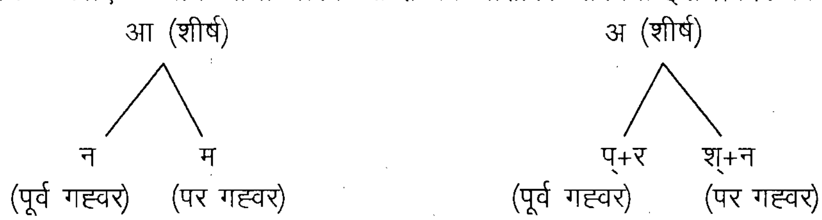

भाषाओं में एकाक्षरी तथा अनेकाक्षरी सभी प्रकार के शब्द पाए जाते हैं।

10.3.2 बल तथा बलाघात

शब्दों का उच्चारण करते समय भाषा-भाषी शब्द में आने वाले विभिन्न अक्षरों पर समान बल देकर नहीं बोलते। किसी अक्षर पर अधिक बल दिया जाता है तो किसी पर कम। उच्चारण में 'बल' के इसी आघात को बलाघात (stress) कहा जाता है तथा लिखित भाषा में अक्षर के ऊपर (/) चिह्न से दिखाया जाता है।

अंग्रेज़ी आदि अनेक भाषाओं में एक ही शब्द में बल-परिवर्तन से शब्द का अर्थ बदल जाता है। उदाहरण के लिए यदि बलाघात शब्द के प्रथम अक्षर पर होता है तो वह शब्द संज्ञा' की कोटि में आ जाता है और जब अंतिम अक्षर पर होता है तो वही शब्द 'क्रिया' की कोटि में आ जाता है :

संज्ञा	क्रिया
permit to	permi´t
conduct	to condúct
present	to presént

जहाँ तक हिंदी का प्रश्न है, हिंदी में बल परितर्वन से शब्द का अर्थ तो नहीं बदलता पर उच्चारण की स्वाभाविकता प्रभावित हो जाती है। उदाहरण के लिए 'छिपकली' शब्द का उच्चारण हिंदी भाषा-भाषी अंतिम अक्षर पर बल देकर करता है - छिपकली। लेकिन यदि अज्ञानवश कोई अंतिम के स्थान पर दूसरे अक्षर पर बल दे देता है - 'छिपकली' तो उसका उच्चारण अस्वाभाविक हो जाता है लेकिन अर्थ में परिवर्तन नहीं होता।

10.3.3 सुर, तान तथा अनुतान

जब भी हम बोलते हैं तो सदा एक ही लहजे में नहीं बोलते। शब्दों के उच्चारण में अक्सर उतार-चढ़ाव आता रहता है। बोलने में आए इसी उतार-चढ़ाव को **'सुर-परिवर्तन'** कहा जाता है। सुर में यह उतार-चढ़ाव कभी स्वर तंत्रियों में अधिक खिंचाव के कारण होता है, कभी फेफड़ों से अधिक मात्रा में वायु निकलने के कारण तो कभी जीभ की मांस-पेशियों में अधिक तनाव के कारण। सुर-परिवर्तन से होने वाले उतार को 'अवरोह' तथा चढ़ाव को 'आरोह' कहा जाता है। अनेक भाषाओं में सुर के इन्हीं आरोह, अवरोह के कारण शब्दों तथा वाक्यों के अर्थ बदल जाते हैं।

तान : शब्द स्तर पर सुर भेद को तान (tone) कहा जाता है। चीनी, जापानी, कोरियन आदि भाषाओं में सुर-परिवर्तन से एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ हो जाते हैं जैसे चीनी भाषा में 'मा' शब्द जब अलग-अलग सुरों के साथ बोला जाता है तो इसके क्रमशः - 'माँ', 'घोड़ा', 'दोष निकालना' तथा 'पटुआ' चार भिन्न अर्थ हो जाते हैं।

सुर-परिवर्तन के कारण जब किसी शब्द का अर्थ बदल जाता है तो उसे 'तान' कहते हैं तथा ऐसी भाषाएँ तान-भाषाएँ (tone languages) कहलाती हैं।

अनुतान : वाक्य स्तर पर सुर भेद को अनुतान (intonation) की संज्ञा दी जाती है। हिंदी अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में सुर-परिवर्तन से शब्द का अर्थ तो नहीं बदलता पर वाक्य का अर्थ अवश्य बदल जाता है। यह गुण संसार की सारी भाषाओं में परिलक्षित होता है। उदाहरण के लिए हिंदी में निम्नलिखित वाक्य अलग-अलग सुरों में बोलने पर अलग-अलग अर्थ देता है :

1. वह आ रहा है। (सामान्य कथन)
2. वह आ रहा है? (प्रश्न)
3. वह आ रहा है! (आश्चर्य)

आरोह-अवरोह की दृष्टि से अनुतान के तीन स्तर हो सकते हैं - **उच्च** (आरोही), **निम्न** (अवरोही) तथा **मध्य** (सम)।

10.3.4 दीर्घता (Length)

इसी को 'मात्रा' भी कहते हैं। जब किसी स्वर का उच्चारण कुछ दीर्घ समय तक किया जाता है वह स्वर 'दीर्घ' कहलाता है और इस दीर्घता के कारण भी शब्द का अर्थ बदल जाता है। हिंदी में 'अ', 'उ' तथा 'इ' तीन ह्रस्व स्वर हैं। यदि इनका उच्चारण दीर्घ समय तक किया जाए तो ये दीर्घ हो जाते हैं। इनके दीर्घ रूपों को हम क्रमशः 'आ', 'ऊ' तथा 'ई' के रूप में लिखते हैं। हिंदी में दीर्घता के कारण भी शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं जैसे :

पल	-	पाल	चल	-	चाल
दिन	-	दीन	सुना	-	सूना

10.3.5 अनुनासिकता

'अ' से लेकर 'औ' तक हिंदी के सभी स्वर निरनुनासिक हैं। लेकिन इनका उच्चारण करते समय यदि हम मुँह के साथ-साथ नाक से भी वायु को बाहर निकालें तो ये सभी स्वर नासिक्य हो जाते हैं। ऐसे स्वरों को ही **'अनुनासिक'** कहा जाता है।

अनुनासिकता हिंदी संरचना के विकास का परिणाम है। चूँकि अनुनासिक स्वर अपने निकटवर्ती निरनुनासिक स्वरों के साथ व्यतिरेक में आकर शब्द का अर्थ बदल देते हैं अतः हिंदी में अनुनासिकता एक महत्वपूर्ण खंडेतर ध्वनि है जैसे :

सास	-	साँस	है	-	हैं
गोद	-	गोंद	पूछ	-	पूँछ

अनुनासिकता को लिखित भाषा में बिंदु तथा चंद्रबिंदु दोनों से लिखा जाता है।

10.3.6 संहिता या संगम

शब्दों का उच्चारण करते समय एक ही शब्द के बीच में आने वाली किन्हीं दो ध्वनियों के बीच यदि थोड़ी देर रूक कर उच्चारण किया जाए तो भी अनेक भाषाओं में शब्दों का अर्थ बदल जाता है। उदाहरण के लिए हिंदी में 'सिरका' शब्द का उच्चारण करते समय यदि वक्ता 'सिर' के बाद थोड़ा विराम देकर 'का' का उच्चारण करता है तो उस शब्द का अर्थ भिन्न हो जाता है :

1. अचार के लिए सिरका ले जाना। (सिरका)
2. मेरे सिरका दर्द अब बंद है। (सिर+का)

शब्द के बीच में किन्हीं दो ध्वनियों के बीच होने वाले इस क्षणिक विराम को ही 'संहिता या संगम' कहा जाता है। संहिता को लेखन में (+) चिह्न से दिखाया जाता है। देखिए कुछ अन्य उदाहरण :

कंबल~कम+बल	1. सर्दी में एक कंबल से काम नहीं चलेगा।
	2. उसमें बहुत कम बल है।
दोना~दो+ना	1. वह दोना भरकर मिठाई लाई।
	2. मुझे भी थोड़ी मिठाई दो ना।

8.4 स्वनिम विज्ञान तथा निष्पादक स्वनिम विज्ञान

8.4.1 स्वनिम विज्ञान : सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

भाषा विज्ञान की संरचनावादी धारा का प्रभाव अमरीकी भाषा-विज्ञान पर 1940 से 1950 तक पर्याप्त मात्रा में रहा। 'संरचनावादी संप्रदाय' के सिद्धांतों तथा भाषा-विश्लेषण की तकनीकों को अपनाकर ध्वनि-सरंचनाओं का अध्ययन जिस विज्ञान के अंतर्गत किया जाता रहा उसी विज्ञान को 'स्वनिम विज्ञान' (phonology) की संज्ञा प्रदान की गई।

भाषा में जब शब्दों का उच्चारण किया जाता है तो उनमें आने वाली ध्वनियों के उच्चारण में विभिन्न प्रकार के अंतर आ जाते हैं। इन अंतरों के अनेक कारण होते हैं तथा हो सकते हैं। कभी-कभी ये अंतर तब सुनाई देते हैं जब एक ही शब्द का उच्चारण विभिन्न भाषाएँ और बोलियाँ बोलने वाले वक्ता अपनी-अपनी मातृभाषाओं के उच्चारण से प्रभावित होकर भिन्न-भिन्न रूप में करते हैं। इसके अलावा शब्दारंभ, शब्द मध्य तथा शब्दांत में जब कोई एक ध्वनि आती है तो अन्य निकटवर्ती ध्वनियों के प्रभाव से भी एक ही ध्वनि के उच्चारण में अंतर आ जाता है। कभी ध्वनियों के उच्चारण में अंतर तब दिखाई देता है जब किसी शब्द में अन्य ध्वनियाँ तो समान रहें पर किसी एक विशेष ध्वनि के स्थान पर कोई दूसरी ध्वनि आ जाती है तो भी उच्चारण में अंतर आ जाता है। परंतु उच्चारण में आए इन अंतरों में वे अंतर ही अध्ययन का विषय बनते हैं जो 'भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण' (linguistically significant) होते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वर्ग-I तथा वर्ग-II के पहले व्यंजन के उच्चारण पर ध्यान दीजिए :

वर्ग-I	वर्ग-II
पल (प्+अ+ल)	कल (क्+अ+ल)
फल (फ्+अ+ल)	काल (क्+आ+ल)
बल (ब्+अ+ल)	किल (क्+इ+ल)
मल (म्+अ+ल)	कील (क्+ई+ल)
चल (च्+अ+ल)	कुल (क्+उ+ल)
छल (छ्+अ+ल)	कूल (क्+ऊ+ल)
जल (ज्+अ+ल)	कोल (क्+ओ+ल)

वर्ग-I के सभी शब्दों के अर्थ में जो अंतर आया है वह पहले व्यंजन के बदल जाने के कारण आया है तथा वर्ग-II के शब्दों का अंतर शब्द मध्य में आन वाले स्वर के कारण है।

वस्तुतः ध्वनियों के उच्चारण में आने वाला अंतर विभिन्न ध्वनियों के परस्पर व्यतिरेक में आने के कारण आया है। आप लोग पिछली कक्षा में पढ़ चुके हैं कि जो ध्वनियाँ समान वातावरण में परस्पर व्यतिरेक में आकर जब शब्द का अर्थ परिवर्तन कर देती हैं तो ऐसी ध्वनियों को **'स्वनिम'** कहा जाता है। और इस प्रकार के उच्चारणगत अंतर जो स्वनिमिक स्तर के होते हैं **भाषा वैज्ञानिक दृष्टि** से महत्व के कहे जा सकते हैं।

लेकिन किसी एक स्वनिम का उच्चारण प्रत्येक स्थिति में एक जैसा होगा, यह भी कोई आवश्यक नहीं है। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी के 'p', 't' तथा 'k' स्वनिमों का उच्चारण शब्द के आरंभ तथा मध्य में एक जैसा नहीं होता। अंग्रेजी भाषा-भाषी शब्दारंभ में इनका उच्चारण [p^h], [t^h] तथा [k^h] के रूप में करता है तथा शब्द के मध्य में [p], [t] तथा [k] के रूप में। देखिए निम्नलिखित उदाहरण :

	शब्द	शब्दारंभ	शब्द मध्य
/p/	pin	[p^hIn)	[spin]
	pen	[p^hen]	[speak]
/t/	tin	[t^hin]	[station]
	ten	[t^hen]	[style]
/k/	kite	[k^hait]	[skin]
	kill	[k^hil]	[maker]

अर्थात् शब्दारंभ में p,t,k व्यंजनों का उच्चारण थोड़े से प्राणत्व के साथ किया जाता है जब कि शब्द मध्य में सामान्य रूप में। परंतु शब्दारंभ तथा शब्द मध्य म उच्चरित होने वाले ये व्यंजन [ph~p], [th~t], [kh~k] वस्तुतः p,t तथा k स्वनिमों के ही रूप हैं। किसी एक स्वनिम के इस प्रकार के उच्चरित रूपों को जो परिपूरक वितरण में आते हैं 'संस्वन' कहते हैं। 'परिपूरक वितरण' से तात्पर्य उस स्थिति से हैं जहाँ एक वातावरण में किसी स्वनिम का एक उच्चरित रूप आता है तो दूसरे में दूसरा रूप।

'स्वनिम-विज्ञान' के अंतर्गत किसी भाषा के विभिन्न स्वनिमों तथा उनके संस्वनों का अध्ययन किया जाता है। हिंदीं में भी /ड/ स्वनिम के दो संस्वन मिलते हैं - [ड] तथा [ड़]। शब्द के आरंभ में तथा व्यंजन गुच्छों में [ड] का उच्चारण किया जाता है तो शब्द मध्य में दो स्वरों के बीच तथा शब्दांत में [ड़] का उच्चारण होता है जैसे :

ड : डर, डलिया, डमरू , अड्डा, गुड्डा , बुड्ढा

ड़ : लड़का, घोड़ा, लकड़ी, जोड़ा, पेड़, मोड़

स्वनिम विज्ञान में स्वनिमों को तिरछे कोष्ठों '//' में तथा संस्वनों को बड़े कोष्ठकों [ ] में लिखा जाता है :

	स्वनिम	संस्वन	
अंग्रेजी में	/p/	[ph]	शब्दारंभ में
		[p]	शब्द मध्य में
	/ड/	[ड]	शब्दारंभ तथा व्यंजन गुच्छ में
		[ड़]	दो स्वरों के बीच तथा शब्दांत में

8.4.2 निष्पादक व्याकरण तथा स्वनिम विज्ञान

आपको यह बताया गया था कि परंपरागत स्वनिम विज्ञान जिसके अंतर्गत स्वनिम एवं संस्वनों का विश्लेषण अध्ययन का प्रमुख विषय था, भाषाविज्ञान के 'संरचनावादी संप्रदाय' के सिद्धांतों से प्रभावित था। 'संरचनावादी संप्रदाय' के भाषाविद् यह मानते थे कि प्रत्येक भाषा विशिष्ट होती है, उसकी संरचना विशिष्ट होती है। आगे चलकर विचारधारा में परिवर्तन आया। अमेरिका में एक बड़े ही प्रसिद्ध भाषाविद् का उदय हुआ। इनका नाम था नोम चॉम्स्की। उन्होंने अपने से पूर्व की भाषा संबंधी समस्त मान्यताओं पर प्रश्न चिह्न लगा दिए और भाषा अध्ययन की दिशा में एक नई दृष्टि प्रदान की।

चॉम्स्की के अनुसार भाषा की दो संरचनाएँ होती हैं - **बाह्य संरचना** तथा **आंतरिक संरचना**। बाह्य संरचना (Surface structure) का संबंध तो भाषा की अभिव्यक्ति के साथ होता है। परंतु भाषा का यह रूप गौण रूप है। भाषा का प्रमुख रूप तो वह है जो भाषा-भाषी के मन में होता है। इसी आंतरिक रूप को चॉम्स्की ने 'आंतरिक संरचना' (Deep structure) कहा था। आंतरिक संरचना को बाह्य संरचना में परिवर्तित करने वाले कुछ नियम होते हैं जिनको चॉम्स्की ने 'रूपांतरण नियम' (Transformations) कहा। बच्चा भाषा सीखते समय अपनी भाषा के समस्त वाक्यों को नहीं सीखता क्योंकि भाषा में वाक्य तो असीमित होते हैं। परंतु इन वाक्यों को नियंत्रित करने वाले नियम हर भाषा में सीमित होते हैं। मानव शिशु में यह जन्मजात क्षमता होती है कि वह अभिव्यक्त भाषा में से इन नियमों को पकड़ लेता है। एक बार जब नियम सीख लेता है तो फिर इन्हीं नियमों के आधार पर उस भाषा के असीमित वाक्यों को उत्पन्न करता चला जाता है। इसीलिए चॉम्स्की के इस व्याकरण का नाम पड़ा - 'रूपांतरण-निष्पादक व्याकरण' (Transformational Generative Grammar)।

इस व्याकरण के सिद्धांतों के अनुसार भाषा की बाह्य संरचना महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि महत्वपूर्ण है उसकी आंतरिक संरचना तथा रूपांतरण नियम जिनका संबंध मानव मस्तिष्क से होता है। आंतरिक संरचना वस्तुतः भाषा की अमूर्त (Abstract) संरचना होती है। निष्पादक व्याकरण के सिद्धांतों के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक 'बाह्य संरचना' के लिए समान आंतरिक संरचना हो। भाषा में यह भी हो सकता है कि भाषा की बाह्य संरचना के स्तर की अभिव्यक्ति की आंतरिक संरचना बिल्कुल भिन्न हो।

आंतरिक संरचना को बाह्य संरचना में रूपांतरित करने वाले विभिन्न नियम एक साथ गुच्छ के रूप में तथा परस्पर एक निश्चित क्रम में ही कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए 'क्या मोहन बाजार नहीं जा रहा?' वाक्य की आंतरिक संरचना 'मोहन बाज़ार जा रहा है' होगी तथा इस आंतरिक संरचना पर तीन नियम एक साथ लगेंगे। ये नियम हैं :

1. प्रश्नवाचक नियम
2. निषेधवाची नियम
3. है-लोप संबंधी नियम

यहाँ यह भी ध्यान रखना होगा कि नियम एक निश्चित क्रम में ही लगते हैं। जैसे ऊपर के वाक्य में पहले निषेधवाची नियम लागू होने के बाद ही है - लोप का नियम लागू होगा क्योंकि भाषा में 'है' का लोप प्रायः निषेधवाची वाक्यों में ही पाया जाता है।

भाषा की आंतरिक संरचना या अमूर्त संरचना भाषा के प्रत्येक स्तर पर होगी। चाहे वह वाक्य संरचना का स्तर हो या शब्दों के उच्चारण का स्तर। जैसे हिंदी के 'लड़का' शब्द की अमूर्त आंतरिक संरचना 'लडका' होगी और यह मानना होगा कि 'ड' व्यंजन दो स्वरों के मध्य आने के कारण 'ड़' में परिवर्तित हो गया है। इस प्रकार परंपरागत स्वनिम विज्ञान जो 'स्वनिम तथा 'संस्वन' ध्वनियों के दो स्तर मान कर चल रहा था, निष्पादक व्याकरण के सिद्धांतों से प्रभावित स्वनिम विज्ञान अर्थात् 'निष्पादक स्वनिम विज्ञान' (Generative Phonology) में यह मान कर चला गया कि ध्वनियों की संरचना के दो स्तर तो होते हैं - एक उच्चारण का स्तर या बाह्य संरचना का स्तर तथा दूसरा 'अमूर्त स्तर' (आंतरिक संरचना का स्तर) और अमूर्त आंतरिक संरचना को बाह्य संरचना के स्तर में परिवर्तित करने वाले स्वनिमिक नियम होते हैं।

8.4.3 अभिव्यक्ति के विभिन्न स्तर एवं निष्पादक स्वनिम विज्ञान

परंपरागत स्वनिम विज्ञान में **स्वनिम** तथा **संस्वन** की अवधारणा से स्वनिमिक संरचना (Phonlogical representaiton) के दो स्तरों की संकल्पना खड़ी होती है :

1. एक तो उच्चारण का स्तर या वह स्तर जिसे परंपरागत रूप से 'स्वनिकीय स्तर' (Phonetic) कहा जाता है तथा
2. दूसरा वह स्तर जहाँ ध्वनियाँ परस्पर व्यतिरेक में आती हैं अर्थात् स्वनिमिक (Phonemic) स्तर।

यद्यपि स्वनिकीय स्तर का संबंध ध्वनियों के उच्चारणात्मक स्तर से होता है परंतु फिर भी यह ध्यान रखना होगा कि यह स्तर 'भौतिक स्वनिकी' (Physical Phonetics) का नहीं है जहाँ ध्वनियों के उच्चारण संबंधी सभी सूक्ष्म विवरण जैसे उच्चारण में होने वाला स्वर तंत्रियों में खिंचाव, माँस-पेशियों में तनाव, प्राणत्व की मात्रा, ध्वनितरंगों की लंबाई आदि का प्रायः विवरण दिया जाता है। इस स्तर पर हम ध्वनियों के केवल उन उच्चारणात्मक अंतरों को महत्व देते हैं, जिनके आधार पर उनको 'संस्वन' का दरजा मिल सके। इस प्रकार देखा जाए तो 'भौतिक स्वनिकीय स्तर' की तुलना में 'स्वनिकीय स्तर' एक अमूर्त स्तर है जहाँ केवल संस्वनों से संबंधित अंतरों को ही महत्व दिया जाता है। निष्पादक स्वनिमविज्ञान में इस स्तर को 'व्यवस्थित स्वनिकीय स्तर' (Systematic phonetic level) कहा जाता है।

इस प्रकार यदि 'भौतिक स्वनिकीय स्तर' की तुलना में 'व्यवस्थित स्वनिकीय स्तर अमूर्त है तो इसकी तुलना में 'स्वनिमीय स्तर' (Phonemic level) की अभिव्यक्ति तो और भी अधिक 'अमूर्त' मानी जाएगी जहाँ ध्वनियों की अधिकांश उच्चारणात्मक सूचनाएँ प्रायः छोड़ दी जाती हैं। उदाहरण के लिए अंग्रेजी के [p^hin तथा [spin] शब्दों के 'P^h' तथा 'p' व्यंजनों के अंतर अमूर्त स्वनिमिक स्तर पर छोड़ दिए जाते हैं और यह मान लिया जाता है कि स्तर पर [P^h] तथा [p] वस्तुतः एक ही स्वनिम /p/ के ही उच्चरित रूप हैं।

आगे चलकर निष्पादक स्वनिम विज्ञान में 'स्वनिम' की सत्ता को ही नकार दिया गया। यह बात नहीं थी कि यहाँ स्वनिकीय या व्यवस्थित स्वनिकीय स्तर की संरचनाओं की तुलना में किसी अमूर्त स्तर को नकारे जाने की बात थी बल्कि इस संप्रदाय के मानने वाले भाषाविदों के अनुसार स्वनिमिक स्तर से भी अधिक अमूर्त स्तर की संकल्पना की जानी आवश्यक थी क्योंकि 'स्वनिमिक सार' इतना अमूर्त नहीं होता जहाँ भाषा के सभी उच्चारण संबंधी भेदों को स्पष्ट किया जा सके। स्वनिमिक विश्लेषण में ऐसी स्थितियाँ भी आती हैं जब स्वनिमिक स्तर की अमूर्त संकल्पना उनको स्पष्ट कर पाने में असमर्थ होती है। आइए इसी बात को अंग्रेजी के एक अन्य उदाहरण से समझते हैं :

अंग्रेजी में दो शब्दों electric तथा electricity की स्वनिमिक संरचनाएँ होंगी – |elektrik| तथा |elektrisiti|। अंग्रेजी का electricity शब्द वस्तुतः electrik शब्द में ity प्रत्यय लगकर बना है और इसकी संरचना से स्पष्ट होता है कि अंग्रेजी में 'i' स्वर के पूर्व शब्दांत में आने वाले 'k' का उच्चारण 's' के रूप में किया जाता है।

इस स्थिति की तुलना उस स्थिति से की जा सकती है जहाँ अंग्रेजी में 'pin' शब्द की आरंभिक ध्वनि [p^h] तथा 'spin' शब्द की [p] ध्वनि को अमूर्त स्वनिमिक स्तर पर एक ही ध्वनि |p| के रूप में ग्रहण किया गया था। इस आधार पर हमें [elektrik] शब्द के [k] तथा [elektrisiti] शब्द के [s] व्यंजन को अमूर्त स्तर पर एक मानना होगा तथा यह स्वीकार करना होगा कि ये या तो |k| अथवा |s| स्वनिम के संस्वन हैं। मान लीजिए थोड़ी देर के लिए हम इन्हें |k| स्वनिम के संस्वन मान लेते हैं तब हमें अंग्रेजी में यह स्वीकार करना होगा कि 'k' संस्वन शब्दांत में आता है तथा 's' संस्वन i स्वर के पूर्व

	[r]	शब्दांत में
/k/		
	[s]	i स्वर के पूर्व

परंतु यह मानते ही अनेक प्रश्न उठ खड़े होंगे क्योंकि हम जानते हैं कि अंग्रेजी में 'k' तथा 's' व्यंजन दो स्वतंत्र स्वनिम पहले से ही स्वीकृत हैं, अतः एक को दूसरे का संस्वन नही माना जा सकता। इस प्रकार 'electricity' शब्द की स्वनिमिक संरचना /elektrik+iti/ 'स्वनिमिक स्तर' की अभिव्यकति नहीं मान सकते। मातृभाषा-भाषी यह जानता है कि 'elecricity' शब्द में ity प्रत्यय के पूर्व उच्चरित होने वाला 's' व्यंजन आंतरिक अमूर्त स्तर पर 's' न होकर 'k' ही है और किसी स्वनिमिक नियम के प्रभाव से उच्चारण स्तर पर 's' हो गया है।

इस प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए 'निष्पादक स्वनिम विज्ञान' ने एक ऐसे स्तर की संकल्पना की जो परंपरागत 'स्वनिमिक स्तर' की तुलना में अधिक अमूर्त है तथा जहाँ 'electricity' शब्द के लिए |elektrik+iti| जैसी अभिव्यक्तियों को प्रतिपादित किया जा सके।

निष्पादक स्वनिम विज्ञान ने इस स्तर को 'व्यवस्थित स्वनिमिक स्तर' (Systamatic phonemic level) की संज्ञा प्रदान की। परंपरागत 'स्वनिमिक स्तर' से इसकी भिन्नता दिखाने के लिए निष्पादक स्वनिम विज्ञान के अनुयायियों ने इसे 'विवरणात्मक स्वनिमीय स्तर' (taxonomic or autonomous phonemic level) नाम से अभिहित किया। अर्थात् जिस स्तर को परंपरागत स्वनिम विज्ञान में 'स्वनिमिक स्तर' कहा गया था उसी स्तर को निष्पादक स्वनिम विज्ञान के अनुयायियों ने 'विवरणात्मक स्वनिमीय स्तर' कहा।

अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं :

1. संरचनावादी संप्रदाय से प्रभावित परंपरागत स्वनिम विज्ञान तथा निष्पादक स्वनिम विज्ञान दोनों ही में स्वनिमिक संरचना के दो स्तर के दो-दो स्वीकार किए गए।

2. परंपरागत स्वनिम विज्ञान में स्वीकृत स्वनिमिक स्तर उतना अमूर्त नहीं होता जहाँ किसी भाषा के सभी उच्चारणात्मक अंतरों को स्पष्ट किया जा सके। अतः निष्पादक स्वनिम विज्ञान में स्वीकृत 'व्यवस्थित स्वनिमीय स्तर' अधिक अमूर्त स्तर है।

3. व्यवस्थित स्वनिमीय स्तर का संबंध मातृभाषा भाषी के मन में रहने वाली अमूर्त अभिव्यक्तियों के साथ होता है।

4. इस आंतरिक अमूर्त स्तर की अभिव्यक्तियों को मूर्त स्वनिकीय स्तर की अभिव्यक्तियों में परिवर्तित करने वाले कुछ नियम होते हैं जिन्हें स्वनिमीय नियम (Phonological rules) कहा जाता है :

व्यवस्थित स्वनिमीय अभिव्यक्ति → व्यवस्थित स्वनिकीय स्तर

स्वनिमीय-नियम

8.4.4 निष्पादक स्वनिम विज्ञान तथा प्रभेदक अभिलक्षण

संरचनात्मक भाषा वैज्ञानिकों ने 'स्वनिम' को एक अविभाज्य इकाई के रूप में परिभाषित किया था। उनके अनुसार स्वनिम एक ऐसी इकाई है जिसके खंड नहीं किए जा सकते। परंतु निष्पादक स्वनिम विज्ञान ने स्वनिम की सत्ता को ही नकार दिया क्योंकि 'स्वनिमिक' स्तर उतना अमूर्त नहीं है जितना कि स्वनिमिक संरचनाओं के विश्लेषण के लिए अपेक्षित है। साथ ही किसी भी स्वनिम या ध्वनि को अविभाज्य भी नहीं माना जा सकता। उदाहरण के लिए हिंदी में प, फ, ब, भ व्यंजनों में यदि अंतर दिखाना हो तो हम एक ध्वनि का दूसरी ध्वनि से अंतर उसके विभिन्न अभिलक्षणों के आधार पर ही करते हैं :

प	स्पर्शी	ओष्ठ्य	अघोष	अल्पप्राण
फ				महाप्राण
ब		अघोष	सघोष	अल्पप्राण
भ				महाप्राण

वस्तुतः कोई भी ध्वनि एकाधिक अभिलक्षणों का गुच्छ है और ये अभिलक्षण ही एक ध्वनि को दूसरी ध्वनि से भिन्न करते हैं। चूँकि अभिलक्षणों के द्वारा विभिन्न ध्वनियों में परस्पर भेद स्थापित किया जाता है अतः ये अभिलक्षण 'प्रभेदक अभिलक्षण' कहलाते हैं।

8.4.5 द्विचर अभिलक्षण (Binary features)

निष्पादक स्वनिम विज्ञान में स्वनिमिक नियमों को स्पष्ट करने के लिए अभिलक्षणों को ही आधार बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त यहाँ एक बात और बताई गई जो परंपरा से भिन्न थी। उदाहरण के लिए यदि हम कहते हैं कि 'प' व्यंजन अघोष है तथा 'ब' व्यंजन सघोष है तो वास्तव में हम दो अलग-अलग अभिलक्षणों को प्रयोग कर रहे हैं। निष्पादक स्वनिम विज्ञान के प्रणेताओं ने यह संकल्पना सामने रखी कि अभिलक्षणों का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए कि एक ही अभिलक्षण के साथ धन (+) या ऋण (-) का चिह्न लगाकर हम दो-दो अभिलक्षणों को स्पष्ट कर सकें। उदाहरण के लिए [+घोष] का अर्थ हो जाएगा 'सघोष' तथा [-घोष] का अर्थ होगा अघोष। इसी तरह [+प्राणत्व] का अर्थ होगा महाप्राण तथा [-महाप्राण] का अर्थ हो जाएगा अल्पप्राण।

इस प्रकार एक ही 'मूल्य' से '+' या '-' का चिह्न लगाकर हम ध्वनियों के दो अभिलक्षणों (गुणों) को स्पष्ट कर सकते हैं। ऐसे अभिलक्षणों को 'द्विचर अभिलक्षण' (Binary features) कहते हैं।

8.4.6 स्वनिमिक नियम तथा उनकी लेखन विधि

अमूर्त आंतरिक स्वनिमिक अभिव्यक्ति (व्यवस्थित स्वनिमिक स्तर की अभिव्यक्ति) को उच्चारण स्तर की अभिव्यक्ति (व्यवस्थित स्वनिमीय स्तर की अभिव्यक्ति) में परिवर्तित करने वाले प्रत्येक भाषा में कुछ नियम होते हैं जिन्हें 'स्वनिमिक नियम' कहा जाता है। स्वनिमिक

नियम वास्तव में वे परिवर्तन हैं जो किसी शब्द में उच्चारण स्तर पर विभिन्न ध्वनियों के एक दूसरे पर पड़ने वाले प्रभाव के कारण उत्पन्न होते हैं।

स्वनिमिक नियमों को भाषा में विस्तार से न लिखकर संक्षेप में सूत्र रूप में लिखा जाता है। उदाहरण के लिए हिंदी में 'ड' व्यंजन जब दो स्वरों के मध्य में आ जाता है तो वह 'ड़' में परिवर्तित हो जाता है। इसी नियम को यदि हमें सूत्र रूप में लिखना हो इस प्रकार लिखेंगे :

[ड] [ड़] / स्वर – स्वर

अर्थात् एक लंबी आड़ी लकीर के एक ओर तो उस परिवर्तन को दिखाया जाता है जो किसी विशेष ध्वनि में हो रहा है तथा लकीर के दूसरी ओर उस परिवेश को जिसमें कि वह ध्वनि परिवर्तन हुआ है। उक्त नियम में 'ड' व्यंजन का परिवर्तन 'ड़' में हुआ है। परिवर्तन को हम तीर के चिह्न से दिखाते हैं। परिवेश से तात्पर्य उन ध्वनियों से है जो परिवर्तित होने वाली ध्वनि के पूर्व तथा बाद में आ रही हैं। दोनों ओर की ध्वनियों या उनके अभिलक्षणों को एक छोटी-सी सीधी रेखा के पूर्व तथा बाद में लिखा जाता है। ऊपर के नियम में 'ड' के पूर्व भी एक स्वर है तथा बाद में भी एक स्वर। पड़ी लकीर के पूर्व तथा बाद में 'स्व' अर्थात् 'स्वर' के होने का संकेत दिया गया है।

इसी प्रकार हिंदी में प्रायः नासिका व्यंजन के पूर्व आने वाले स्वर प्रायः दीर्घ हो जाते हैं तथा नासिक्यीकृत हो जाते हैं। इस नियम को हम इस प्रकार लिख सकते हैं :

[-व्यंजनात्मक] [+दीर्घ/ +नासिक्य] /— [+व्यंजन/ + नासिक्य]

यहाँ – व्यंजनात्मक ध्वनि से तात्पर्य उन ध्वनियों से हैं जो व्यंजन नहीं हैं अर्थात् स्वर। ये स्वर दीर्घ हो जाते हैं यह बात +दीर्घ अभिलक्षण से, तथा नासिक्यीकृत हो जाते हैं +नासिक्य अभिलक्षणों से प्रकट की गई है। जहाँ तक परिवेश या वातावरण की स्थिति है उसे देख कर हम कह सकते हैं कि यह परिवर्तन उस समय होता है जब उस स्वर के बाद कोई नासिक्य व्यंजन (+व्यंजन तथा +नासिक्य) आ जाता है।

इस प्रकार स्वनिमिक नियमों का किसी भाषा के उच्चारण में विशेष महत्व होता है। ये नियम कई प्रकार के हो सकते हैं जैसे :

1. **अभिलक्षण परिवर्तन संबंधी नियम :** वे नियम जिनमें किसी एक ध्वनि का दूसरी ध्वनि के प्रभाव से अभिलक्षण या गुण ही बदल जाता है। जैसे ऊपर नासिक्य व्यंजन के प्रभाव से निरनुनासिक स्वर के अभिलक्षण + नासिक्य हो जाना।

2. **आगम संबंधी नियम :** किसी शब्द में उच्चारण के स्तर पर किसी नई ध्वनि का आगम हो जाता है भले ही उसकी अमूर्त संरचना में वह ध्वनि न हो। जैसे हिंदी में 'स्नान', 'स्थान' आदि शब्दों में उच्चारण के स्तर पर आरंभ में 'इ' अथवा 'अ' स्वर का आगम हो जाता है और मातृभाषा भाषी प्रायः इनका उच्चारण 'इस्नान/अस्नान' या 'इस्थान/अस्थान' के रूप में करते पाए जाते हैं।

3. **लोप संबंधी नियम :** अनेक बार ऐसा भी होता है कि शब्द की अमूर्त संरचना में कोई ध्वनि रहती है पर उच्चारण के स्तर पर उसका लोप हो जाता है या वह उच्चरित नहीं की जाती। ऐसी स्थिति में इन शब्दों की आंतरिक अमूर्त संरचना में उस ध्वनि को हमें लेना होता है और लोप संबंधी नियम से उसका लोप दिखाना होता है। उदाहरण के लिए हिंदी में शब्दांत में आने वाले 'अ' स्वर का लोप हो जाता है हम 'राम', 'आज', 'अब' आदि शब्दों को वस्तुतः राम्, 'आज्', 'अब्' के रूप में उच्चरित करते हैं।

4. **क्रम परिवर्तन संबंधी नियम :** कभी-कभी शब्दों में उच्चारण के स्तर पर ध्वनियों का परस्पर क्रम परिवर्तन भी हो जाता है जैसे हिंदी में वाराणसी तथा 'बनारस' शब्दों में

'रा' तथा नासिक्य व्यंजन का क्रम परिवर्तन हो गया है। इसी प्रकार 'लखनऊ' शब्द का उच्चारण कुछ लोग 'नखलऊ' रूप में भी करते पाए जाते हैं जहाँ 'न' तथा 'ल' व्यंजनों में क्रम परिवर्तन हो जाता है।

5. **संधि के नियम :** जब किसी शब्द में स्वरों या व्यंजनों के उच्चारण में अनेक प्रकार के परिवर्तन संधि के कारण होते हैं तो ऐसे नियम संधि संबंधी नियम कहलाते हैं। जैसे : हिंदी में

रमा+ईश = रमेश (आ+ई→ए),
विद्या+आलय = विद्यालय आदि।

8.5 हिंदी की स्वनिमिक समस्याएँ

8.5.1 अ-लोप की समस्या

हिंदी की ध्वनि व्यवस्था का एक प्रमुख नियम है - 'अ-लोप का नियम'। वस्तुतः हिंदी में उच्चारण के स्तर पर हमें अनेक शब्दों में अ-स्वर के लोप की दो स्थितियाँ दिखाई देती हैं - एक तो शब्दांत में तथा दूसरी शब्द-मध्य में। आइए इन दोनों स्थितियों में होने वाले अ-लोप की प्रकृति को समझा जाए।

अन्त्य-अ-लोप की स्थिति

निम्नलिखित शब्दों की वर्तनी पर ध्यान दीजिए :

1. पाठक, 2.लेख, 3. तड़प, 4. मन, 5. रोग, 6. सफल

इन सभी शब्दों की वर्तनी में यद्यपि शब्द के अंत में अ-स्वर मौजूद है परंतु उच्चारण के स्तर पर हिंदी भाषा-भाषी इन सभी शब्दों के उच्चारण में अंतिम 'अ'-स्वर का लोप कर देता है और पाठक्, लेख्, तड़प्, मन्, रोग्, सफल् आदि के रूप में उच्चारण करता है।

यहाँ समस्या इस बात को लेकर है कि जब हम एक ओर यह देख रहे हैं कि हिंदी में प्रत्येक शब्द के अंत में आने वाले अ-स्वर का उच्चारण किया ही नहीं जाता तो फिर शब्दांत में अ-स्वर की सत्ता मानी ही क्यों जाए। अनेक विद्वानों की राय है कि पहले शब्दांत में अ-स्वर की सत्ता स्वीकार करना और फिर किसी नियम से उसका लोप दिखाना तर्कसंगत नहीं है। वस्तुतः यहाँ समस्या इस बात को लेकर है कि लेख, पाठ, रोग, मन आदि शब्द अपने स्वनिमिक रूप में व्यंजनान्त हैं अथवा स्वरांत। अगर यह मान लें कि सभी शब्द व्यंजनान्त हैं तब तो अंतिम अ-स्वर की वहाँ सत्ता होने का प्रश्न ही नहीं उठता। परंतु यदि हम यह मानकर चलते हैं कि ये सभी शब्द स्वरांत हैं तब तो हमें शब्दांत में अ-स्वर की सत्ता माननी होगी और फिर किसी नियम के द्वारा इस अ-स्वर का लोप स्पष्ट करना होगा।

रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव का यह मत रहा है कि लेख, पाठ, मन, रोग, चल आदि शब्द अपने मूल स्वनिमिक स्तर पर स्वरांत ही हैं और उच्चारण के स्तर पर इनके अंत में आने वाले स्वर -'अ' का निम्नलिखित नियम के आधार पर लोप हो जाता है :

$$अ \rightarrow \varnothing / \text{—} \#$$

अर्थात् शब्दांत में 'अ' स्वर शून्य होता है। यहाँ लोप को शून्य (∅) से तथा शब्दांत को '#' चिह्न से दिखाया गया है।

श्रीवास्तव की इस मान्यता से कुछ भाषाविद् सहमत नहीं है। उन लोगों की धारणा यही है कि जब हिंदी भाषा-भाषी शब्दांत में 'अ' का उच्चारण करता ही नहीं है तो फिर शब्दांत में

उसकी सत्ता मानने की आवश्यकत्ता ही क्या है? शब्द के अंत में अ-स्वर की सत्ता मानना क्यों अनिवार्य है इसके निम्नलिखित कारण हैं। निम्नलिखित शब्दों पर ध्यान दें :

कारण-1

	क	ख
वर्ग-I	लेख	लेखक
	पाठ	पाठक
वर्ग-II	लेख	लेखन
	पाठ	पाठन
वर्ग-III	जल	जलज
	नीर	नीरज

इन उदाहरणों में 'ख' वर्ग के सभी शब्द वस्तुतः क-वर्ग के शब्दों से ही व्युत्पन्न हुए हैं। यहाँ हमें इस बात पर पहले विचार करना होगा कि पाठक लेखन या नीरज शब्दों के अंत में आने वाले प्रत्यय का स्वनिमिक विवरण क्या है?

जो विद्वान यह मानते हैं कि पाठ, लेख तथा जल आदि शब्द स्वरांत हैं उनके लिए तो प्रत्यय निश्चित ही +क, +न तथा +ज होंगे परंतु जो लोग मूल शब्दों को व्यजनांत मानते हैं (अर्थात् उनके अंत में अ-स्वर की सत्ता नहीं मानना चाहते) तो उनके लिए प्रत्यय का स्वरूप+'अक', +'अन' तथा + अज' होगा।

यदि हम यह स्वीकार कर लें कि प्रत्यय का स्वनिमिक विवरण क्रमशः +अक, +अन और +अज है तब निम्नलिखित शब्दों की रचना को हम किस प्रकार स्पष्ट करेंगे?

क	ख
वारि	वारिज
मंजु	मंजुल

अर्थात् यहाँ भी उपर्युक्त तर्क के आधार पर +अज तथा +अल प्रत्यय मानना होगा और तब हमें 'वारि+अज' से 'वारिअज' तथा 'मंजु+अल' से 'मंजुअल' शब्द मिलेंगे वारिज तथा मंजुल नहीं। इन शब्दों में तब हमें 'वारिअज', 'मंजुअल' शब्द बनाने होंगे और फिर किसी नियम से 'अ' का लोप दिखाना होगा जो एक प्रकार से अवैज्ञानिक होगा।

इस समस्या का समाधान यही है कि हम यह मानें कि हिंदी के सभी शब्द स्वरांत हैं अर्थात् शब्द की मूल आंतरिक संरचना में एक 'अ'विद्यमान है और उच्चारण के स्तर पर उसका लोप कर दिया जाता है।

कारण-2

शब्दों के अंत में अ-स्वर की सत्ता स्वीकार करने के अन्य कारणों में सबसे महत्वपूर्ण कारण है हिंदी की अपनी ध्वनि-व्यवस्था। श्रीवास्तव (1995) के अनुसार 'ध्वनि व्यवस्था न केवल स्वनिम एवं उनके अंतःसंबंधों के आधार पर बनती है, बल्कि भाषा में जो स्वनिमिक नियम हैं उनके द्वारा भी नियंत्रित होती है।'

उदाहरण के लिए हिंदी की अनुस्वार ध्वनि की स्थिति पर ध्यान दीजिए। आप जानते हैं कि हिंदी में अनुसार सदैव स्वर के बाद आता है और उसके बाद की (परवर्ती) ध्वनि या तो कोई व्यंजन होती है या शून्य जैसे हिंदी (हिन्दी), चंपा (चम्पा), पंकज (पड़्.कज) तथा स्वयं (स्वयम्)।

जहाँ तक 'अनुस्वार' के उच्चारण संबंधी नियम की बात है हिंदी में अनुस्वार शब्द के मध्य में अपने आगे आने वाले व्यंजन का तुल्य स्थानिक रूप ग्रहण कर लेता है अर्थात् अपने आगे आने वाले व्यंजन के वर्ग का नासिक्य व्यंजन बन जाता है यथा :

हिंदी	~	हिन्दी	पंडित	~	पण्डित
चंपा	~	चम्पा	चंचल	~	चञ्चल
गंगा	~	गङ्.गा			

तथा यदि अनुस्वार शब्द के अंत में आता है तो सदैव 'म्' व्यंजन के रूप में उच्चरित होता है जैसे स्वयं (स्वयम्), अहं (अहम्)। इसी बात को हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि शब्दांत में आने वाले अनुस्वार (म्) के बाद यदि व्यंजन से शुरू होने वाला कोई दूसरा शब्द आता है तो यह 'म्' उस व्यंजन के उच्चारण स्थान के अनुरूप अपना स्वरूप ग्रहण कर लेता है जैसे :

सम् + ताप	=	संताप (सन्ताप)
सम् + निहित	=	संनिहित (सन्निहित)
सम् + गीत	=	संगीत (संङ्.गीत)
सम् + लाप	=	सन्लाप (संलाप)
सम् + रचना	=	सन्रचना (संरचना)

परंतु यदि 'सम' (अर्थात् बराबर) नाम, काम आदि शब्दों को भी हम व्यंजनांत मान लेंगे तब अनुस्वार संबंधी नियम उस पर भी घटित होना चाहिए। परंतु ऐसा नहीं होता, देखिए उदाहरण:

सम + ता	=	समता	सम + रूप	=	समरूप
संम + तुल्य	=	समतुल्य	सम + दर्शी	=	समदर्शी
सम + कोण	=	समकोण			

यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या कारण है कि उपसर्ग 'सम+' के बाद ताप आता है तो वह सम् (संताप) बनता है पर जब 'सम' के बाद + ता या तुल्य शब्द आते हैं तो 'सम' का 'म' अपना रूप नहीं बदलता। इसका कारण यही है कि अनुस्वार वाले शब्द म-कारान्त है जबकि अन्य शब्द स्वरांत हैं। अनुस्वार का नियम 'सम', 'काम', 'नाम' जैसे शब्दों पर इसीलिए लागू नहीं होता क्योंकि उनकी आंतरिक संरचना में एक अ-स्वर विद्यमान है।

कारण-3

हिंदी के प्रत्येक शब्द की मूल संरचना में अ-स्वर की सत्ता स्वीकार करने या उन्हे स्वरांत मानने के समर्थन में हिंदी की मूर्धन्य ध्वनियों के नियम को भी आधार बनाया जा सकता है। 'मूर्धन्य-ध्वनियों की समस्या' संबंधी शीर्षक के अंतर्गत आप देखेंगे कि हिंदी में दो स्वरों के बीच में जब 'ड/ढ' व्यंजन आ जाते हैं तो उनका उच्चारण क्रमशः 'ड़/ढ़' के रूप में बदल जाता है। जैसे :

बुड्ढा	~	बूढ़ा	पाण्डे	~	पाँड़े
गड्ढा	~	गढ़ा	ढाई	~	अढ़ाई

परंतु हिंदी में अनेक शब्द ऐसे भी हैं जिनमें शब्दांत में हमें 'ड़/ढ़' ध्वनियाँ दिखाई देती हैं जैसे–जोड़, मोड़, रूढ़, पहाड़ आदि।

यदि हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि शब्द की मूल संरचना में (आंतरिक संरचना में) तो केवल 'ड/ढ' व्यंजनों की सत्ता है और 'ड़/ढ़' में उनका परिवर्तन दो स्वरों के मध्य में उठाने

के कारण होता है तब हमें हिंदी के सभी शब्दों को स्वरांत मानना होगा और जोड़, रूढ़ आदि शब्दों की व्युत्पत्ति इस प्रकार दिखानी होगी :

जोड़ (ज्+ओ+ड्+अ)
मोड़ (म्+ओ+ड्+अ)
रूढ़ (र्+ऊ+ढ्+अ)

परंतु यदि इन शब्दों को हम व्यंजनांत मान लेते हैं तो मूर्धन्य ध्वनियों 'ड़/ढ़' की स्थिति को स्पष्ट कर पाना संभव न होगा।

शब्द मध्य में अ-लोप की स्थिति

जिस प्रकार हिंदी के शब्दांत में आने वाले अ का उच्चारण में लोप कर दिया जाता है उसी प्रकार शब्द के मध्य में भी अनेक स्थानों पर हमें अ-लोप की स्थिति मिलती है। देखिए निम्नलिखित उदाहरण :

क-वग		ख-वर्ग		उच्चरित रूप
फिसलना	-	फिसला	~	फिस्ला
सिमटना	-	सिमटा	~	सिम्टा
सनक	-	सनकी	~	सन्की
चमक	-	चमकीला	~	चम्कीला
बनारस	-	बनारसी	~	बनार्सी
नमक	-	नमकीन	~	नम्कीन

उपर्युक्त शब्दों के उच्चारण को ध्यान में रखते हुए मध्य अ-लोप का नियम इस प्रकार लिखा जा सकता है :

$$\text{अ} \rightarrow \varnothing / VC — C\bar{V}$$

∅ = शून्य
V = स्वर (vowel)
C = व्यंजन (consonent)
$\bar{V}$ = दीर्घ स्वर

अर्थात् हिंदी के शब्दों में मध्य में आने वाले उस अ का लोप कर दिया जाता है जिसके पूर्व एक स्वर तथा व्यंजन हों तथा उसके बाद में व्यंजन तथा दीर्घ स्वर हों।

अ-लोप संबंधी इस नियम के स्पष्टीकरण के संदर्भ में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखिए :

1. यह नियम शब्द के पहले अक्षर पर लागू नहीं होगा। अर्थात् यहाँ, तभी, अभी, नदी, गली, परी आदि शब्दों के पहले अक्षर में आने वाले 'अ' स्वर का उच्चारण में कभी लोप नहीं होगा क्योंकि नदी या गली शब्दों की संरचना 'न्+अ+द्+ई' तथा 'ग्+अ+ल्+ई' है। इन शब्दों में 'अ' स्वर के पूर्व केवल एक व्यंजन आ रहा है जब कि नियम के अनुसार व्यंजन के पूर्व एक स्वर भी होना आवश्यक है।

2. यह भी ध्यान रखिए कि यदि अ-स्वर के पूर्व एक से अधिक व्यंजन हैं तब भी यह नियम लागू नहीं होगा जैसे :

क-वग		ख-वर्ग
बिस्तर	~	बिस्तरों (ब्+इ+स्+त्+अ+र्+ओं)
दर्पण	~	दर्पणों (द्+अं+र्+प्+अ+ण्+ओं)
चप्पल	~	चप्पलें
मच्छर	~	मच्छरों
अक्षर	~	अक्षरों

3. इसी प्रकार 'अ' स्वर के बाद भी यदि एक से अधिक व्यंजन आ जाते हैं तब भी 'अ' स्वर का लोप नहीं होगा जैसे :

पलंग	~	पलंगों	दरख्त	~	दरख्तों

4. यह भी ध्यान रखने की बात है कि 'अ' स्वर का लोप तभी होगा जब अ के बाद आने वाला स्वर दीर्घ हो जैसे :

लड़कियाँ	~	लड़्की	सिमट	~	सिम्टा
चमक	~	चम्कीला	फिसल	~	फिस्ला

5. साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अ-लोप का यह नियम तभी लगेगा जब इसके परिवेश में इसके बायीं ओर कोई रूपिम-सीमा न हो जैस निम्नलिखित शब्दों को देखिए :

बेकसूर	कनकटा
अनकहा	अनमना

इन शब्दों को देखकर लगता है कि इनका उच्चारण क्रमशः बेक्सूर, अनक्हा, कनक्टा, अनम्ना जैसा होना चाहिए था। पर ऐसा इसलिए नहीं होता क्योंकि इन शब्दों की रचना दो रूपिमों के योग से हुई है अर्थात् 'अ' स्वर के पूर्व बायीं ओर रूपिम सीमा विद्यमान है। इनकी रचना इस प्रकार की है :

बे+कसूर	कन+कटा
अन+कहा	अन+मना

8.5.2 उत्क्षिप्त ध्वनियाँ : ड़/ढ़ की समस्या

हिंदी में ट-वर्ग की सभी ध्वनियाँ ट, ठ, ड, ढ, ण, ड़ तथा ढ़ मूर्धन्य ध्वनियाँ हैं। इनमें ट, ड, ढ, ण स्पर्शी हैं तथा 'ड़ तथा ढ़' उत्क्षिप्त। विद्वानों के बीच विवाद इस बात को लेकर रहा है कि हिंदी के 'ड़/ढ़' व्यंजनों को स्वतंत्र स्वनिम माना जाए या यह माना जाए कि ये क्रमशः ड/ढ ध्वनियों के ही परिवर्त (Variants) हैं। परंपरागत स्वनिम वैज्ञानिक प्रायः यही मानकर चले हैं कि 'ड़/ढ़' को हिंदी में स्वतंत्र स्वनिम माना जाए परंतु 'निष्पादक स्वनिम-वैज्ञानिक' इन लोगों के मत से सहमत नहीं हैं।

परंपरागत स्वनिम-वैज्ञानिक दृष्टि : परंपरागत स्वनिम वैज्ञानिकों में भी दो प्रकार के भाषाविद् हैं। एक वर्ग तो उन भाषाविदों का है जो यह मानते हैं कि 'ड़/ढ़' स्वतंत्र स्वनिम है तथा दूसरे वर्ग में वे भाषाविद आते हैं जो यह मानते हैं कि हिंदी की 'ड़/ढ़' ध्वनियाँ स्वतंत्र स्वनिम न होकर क्रमशः 'ड/ढ' स्वनिमों के संस्वन हैं। पहले वर्ग के प्रमुख भाषाविदों में कामता प्रसाद गुरू (1920), कैलोग (1875), अशोक केलकर (1968) आदि के नाम प्रमुख हैं तथा दूसरे वर्ग में आने वाले विद्वानों में कैलाश चंद्र भाटिया, वी.रा. जगन्नाथन, मसूद हुसैन आदि हैं। जो भाषाविद 'ड़/ढ़' ध्वनियों को स्वतंत्र स्वनिम मानते हैं उन लोगों ने अपने समर्थन में निम्नलिखित प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जहाँ 'ड/ढ' व्यंजन भी उसी वातावरण में आते हुए देखे जा सकते हैं जिस वातावरण में 'ड़/ढ़' आते हैं (अर्थात् दो स्वरों के मध्य) :

वर्ग-I

संस्कृत से आगत तत्सम शब्द जिनमें ड/ढ व्यंजन 'ड़/ढ़' के व्यतिरेक में आते दिखाई देते हैं:

1. आ+ड्+अ+म्+ब्+अ+र+	(आडम्बर)	-	आ+ड़्+ऊ	(आड़ू)
2. त्+अ+ड्+इ+त+	(तडित)	-	त्+आ+ड़्+ई	(ताड़ी)
3. उ+ड्+उ	(उडु)	-	उ+ड़+ऊँ	(उड़ूँ)

वर्ग-II

अंग्रेज़ी से आगत वे शब्द जिनमें ड/ढ या तो दो स्वरों के मध्य दिखाई देते हैं अथवा शब्दांत में जो वस्तुतः 'ड़/ढ़' के आने का वातावरण है :

1. स्+ओ+ड्+आ(सोडा) - ज्+ओ+ड़+आ (जोड़ा)
2. प्+ऍ+ड (पॅड) - प्+ए+ड़ (पेड़)
3. म्+ऊ+ड (मूड) - म्+ऊँ+ड़ (मूँड़)

वर्ग-III

व्युत्पन्न शब्द अर्थात् संयुक्त शब्द (compound words) जिनमें 'ड/ढ' दो स्वरों के बीच दिखाई देते हैं जैसे :

1. अ+डिग (अ+ड्+इ+ग)
2. नि+ढाल (न्+इ+ढ्+आ+ल)
3. वि+डम्बना (व्+इ+ड्+अ+म्+ब्+अ+न्+आ)

वस्तुतः परंपरागत वैयाकरणों या भाषाविदों द्वारा दिए गए इस प्रकार के शब्दों को ड/ढ तथा ड़/ढ़ की स्वनिमिक स्थिति को स्पष्ट करने के लिए आधार नहीं बनाया जा सकता। इन लोगों के तर्कों को आगे चलकर निष्पादक स्वनिम वैज्ञानिकों ने इस आधार पर स्वीकृत नहीं किया क्योंकि किसी भी भाषा की समग्र स्वनिमिक व्यवस्था को उसी भाषा के शब्दों के आधार पर स्पष्ट किया जाना चाहिए न कि दूसरी भाषा से आगत शब्दों के आधार पर, भले ही ये शब्द अंग्रेजी आदि योरोपीय भाषाओं से आए हों अथवा संस्कृत से। साथ ही व्युत्पन्न शब्दों अथवा संयुक्त शब्दों को भी हम आधार नहीं बना सकते क्योंकि ये दो भिन्न रूपिमों से मिलकर बनते हैं और इन दो रूपिमों के बीच 'रूपिम सीमा' के आ जाने से भी ऐसे शब्दों पर नियम नहीं लग सकता।

निष्पादक स्वनिम वैज्ञानिक दृष्टि : निष्पादक स्वनिम विज्ञान के सिद्धांतों को आधार बनाकर 'ड/ढ' व्यंजनों की समस्या पर विचार करने वाले प्रमुख भाषाविद हैं - रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, नारंग तथा बेकर, मंजरी ओहाला, पी.बी. पंडित आदि। इनमें इस समस्या को बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषित करने का प्रमुख श्रेय प्रो. श्रीवास्तव को ही जाता है। उनके विचारों को प्रायः सभी भाषाविदों ने स्वीकार भी कर लिया है।

इन भाषाविदों की धारणा यही है कि हिंदी में 'ड़/ढ़' व्यंजनों का अस्तित्व केवल शब्द की बाह्य संरचना पर ही है। शब्द की आंतरिक संरचना में तो क्रमशः 'ड/ढ' व्यंजन ही हैं जो दो स्वरों के मध्य आ जाने के कारण क्रमशः ड़/ढ़ में परिवर्तित हो जाते हैं। अर्थात् यह माना गया कि मूलतः हिंदी में ड/ढ व्यंजनों का ही शब्द की मूल संरचना में स्थान है। ये व्यंजन जब भी कभी दो स्वरों के मध्य में आ जाते हैं उच्चारण के स्तर पर 'ड' का उच्चारण 'ड़' तथा 'ढ' का उच्चारण 'ढ़' हो जाता है।

नियम ड/ढ → ड़/ढ़ / स्व — स्व

इस नियम के समर्थन में निम्नलिखित उदाहरण देखे जा सकते हैं :

	ड/ढ		**ड़/ढ़**
वर्ग (क)	डर	-	पहाड़ी (प्+अ+ह्+आ+ड़+ई)
	ढंग	-	घोड़ा
	अण्डा	-	घड़ा
	अड्डा	-	बड़ा
वर्ग (ख)	बुड्ढा	-	बूढ़ा
	गड्ढा	-	गढ़ा
	ढाई	-	अढ़ाई

उपर्युक्त उदाहरणों में हम देख सकते हैं कि ड/ढ व्यंजन या तो शब्द के आरंभ में आ रहे हैं अथवा संयुक्त व्यंजनों के रूप में दो स्वरों के मध्य तो 'ड़/ढ़' ध्वनियाँ ही आ रही हैं। इस नियम को हम इस प्रकार लिख सकते हैं :

ड/ढ → ड़/ढ़ / स्वर — स्वर

अर्थात् ड/ढ व्यंजन जब दो स्वरों के मध्य आते हैं तो क्रमशः ड़/ढ़ में परिवर्तित हो जाते हैं। मूर्धन्य ध्वनियों का यह नियम हिंदी की अ-लोप की समस्या के समाधान में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है। इस बात को समझने के लिए निम्नलिखित उदाहरण देखिए :

वर्ग-क	1.	बिगड़ा (ब्+इ+ग्+ड़+आ)	**वर्ग-ख**	5.	मोड़ (म्+ओ+ड़)
	2.	लड़का (ल्+अ+ड़+क्+आ)		6.	जोड़(ज्+ओ+ड़)
	3.	लकड़ी (ल्+अ+क्+ड़+ई)		7.	बाढ़ (ब्+आ+ढ़)
	4.	तड़पन (त्+अ+ड़+प्+अ+न)		8.	पहाड़ (प्+ह्+आ+ड़)

वर्ग 'क' तथा वर्ग 'ख' के उपर्युक्त शब्दों की बाह्य संरचना को देखा जाए तो कोई भी यह कह सकता है कि इन शब्दों में 'ड़/ढ़' व्यंजन दो स्वरों के मध्य नहीं आ रहे। परंतु हमें शब्द की बाह्य संरचना पर उतना ध्यान नहीं देना जितना उसकी मूल या आंतरिक संरचना पर। 'बिगड़ा', 'पेड़' आदि शब्द कैसे बने यह जानने के लिए पहले हमें उनकी आंतरिक संरचना देखनी होगी जो इस प्रकार होगी :

बिगड़ा	पेड़
[ब्+इ+ग्+अ+ड्+आ]	[प्+ए+ड+अ]

यहाँ आंतरिक संरचना में ड़ व्यंजन नहीं है बल्कि ड ही है। चूँकि 'ड' दो स्वरों के मध्य आ गया है अतः यह 'ड़' में परिवर्तित हो जाता है। बाद में 'बिगड़ा' शब्द पर शब्द मध्य अ-लोप का नियम लगता है जिसके अनुसार 'मध्य में आने वाले उस 'अ' का लोप हो जाता है जिसके बाद व्यंजन तथा दीर्घ स्वर आते हों (अ → ∅ / VC — C V)। इसी प्रकार 'पेड़' शब्द में अंत-अ-लोप का नियम लगता है जहाँ शब्दान्त में आने वाले 'अ' का लोप हो जाता है (अ → ∅ / — #)। इन शब्दों की उत्पत्ति को इस प्रकार दिखा सकते हैं :

आंतरिक संज्ञा	[ल्+अ+ड्+अ+क्+आ]	[म्+ओ+ड्+अ]
नियम-I उत्क्षिपतीकरण ड→ड़/स्व-स्व	[ल्+अ+ड़्+अ+क्+आ]	[म्+ओ+ड़्+अ]
नियम-II मध्य-अ-लोप अ→∅/VC—CV	[ल्+अ+ड़+अ+क्+आ]	[म्+ओ+ड़्+अ]
नियम-III अन्त्य अ-लोप अ→∅/—#	[ल्+अ+ड़+अ+क्+आ] लड़का	[म्+ओ+ड़] मोड़

इस प्रकार यह ध्यान रखिए कि हिंदी में 'ड़/ढ़' व्यंजन वस्तुतः ड/ढ़ व्यंजनों के दो स्वरों में आ जाने के कारण बने रूप हैं। शब्दार्थ के धरातल पर एक दूसरे से संबद्ध निम्नलिखित शब्द युग्म इसी बात को सिद्ध कर रहे हैं :

ढाई ~ अढ़ाई   गड्ढा ~ गढ़ा   बुड्ढा ~ बूढ़ा

अर्थात् 'ढ' व्यंजन या तो शब्द के आरंभ में आ रहा है या संयुक्त व्यंजन के रूप में, जब भी वह दो स्वरों के मध्य आ जाता है उसका उच्चारण क्रमशः 'ढ़' हो जाता है। यही बात शब्द विकल्पक की अनुस्वार-अनुनासिक की स्थिति में भी देखी जा सकती है जैसे :

पाण्डे ~ पाँड़े	भोण्डा ~ भोंड़ा
हाण्डी ~ हाँड़ी	साण्ड ~ साँड़

वस्तुतः देखा जाए तो ये एक ही मूल शब्द के दो रूप हैं जिनका प्रयोग विकल्पवत होता है। जहाँ अनुस्वार (व्यंजन) के रूप में प्रयोग है वहाँ 'ण्ड' के रूप में वह उच्चरित होता है पर जैसे ही अनुनासिकता की स्थिति बनती है तो दो स्वरों के बीच आ जाने के कारण उसका उच्चारण 'ड़' हो जाता है। जैसे प्+आँ+ड़+ए।

8.5.3 नासिक्य ध्वनियों की समस्या

नासिक्य ध्वनियों के विषय में आप पहले भी पढ़ चुके हैं। इन ध्वनियों के उच्चारण में वायु मुख के साथ-साथ नासिका के मार्ग से भी बाहर निकलती है। इस दृष्टि से स्वर ध्वनियाँ भी नासिक्य हो सकती हैं तथा व्यंजन भी। हिंदी में सभी पंच-वर्गीय व्यंजनों के अंतिम व्यंजन - ङ., ञ, ण, न तथा म नासिक्य व्यंजन हैं तथा 'अ' से लेकर 'औ' तक के सभी स्वरों का उच्चारण भी नासिका से वायु को बाहर निकाल कर किया जा सकता है।

हिंदी में दो प्रकार की नासिक्य ध्वनियाँ मिलती हैं :

अनाश्रित नासिक्य ध्वनियाँ : अनाश्रित नासिक्य ध्वनियों से तात्पर्य उन व्यंजन ध्वनियों से है जिनकी उच्चारणात्मक प्रकृति अपने परिवेश की अन्य ध्वनियों से प्रभावित नहीं होती और प्रायः भाषा में ये स्वतंत्र रूप से उच्चरित की जा सकती हैं।

हिंदी में 'न्', 'म्' तथा 'ण' पूर्णतः अनाश्रित नासिक्य व्यंजन हैं जो परस्पर व्यतिरेक में आने के कारण स्वनिमिक स्तर के व्यंजन हैं1 इनमें न् तथा म् तो शब्द के आदि, मध्य तथा अंत तीनों ही स्थानों पर प्रयुक्त होते हैं जब कि 'ण' व्यंजन शब्द के आरंभ में कभी नहीं आता जैसे :

न्	-	नल,	काना	भोजन
म्	-	मन	कमी	आम
ण्	-	×	प्रणाम	प्राण

'ण' व्यंजन के संबंध में एक बात और ध्यान देने की है कि यह केवल तत्सम शब्दों में ही आता है, आम बोल चाल के- शब्दों में इसका उच्चारण 'न' के रूप में ही किया जाता है जैसेः

प्राण	-	प्रान	बाण	-	बान
कण	-	कन	अरुण	-	अरुन

म/न व्यंजनों के महाप्राण रूप : हिंदी ध्वनियों के विकास-क्रम में आज हिंदी में 'म/न' ध्वनियों के महाप्राण रूप 'म्ह/न्ह' भी विकसित हो गए हैं जैसे कन्हाई, कुम्हार, तुम्हें आदि। कुछ स्थितियों में चूँकि इनके व्यतिरेकी युग्म भी मिल जाते हैं अतः 'म्ह/न्ह' को स्वतंत्र स्वनिम मानने की बात भी की जाने लगी है जैसे :

कुमार	-	कुम्हार	कान	-	कान्ह

आश्रित नासिक्य ध्वनियाँ : आश्रित नासिक्य ध्वनियों के अंतर्गत हिंदी में अनुस्वार (N) तथा अनुनासिक ध्वनियाँ मिलती हैं। अनुस्वार जहाँ एक आश्रित व्यंजन है-वहीं अनुनासिक स्वर है। चूँकि इन दोनों का उच्चारण अपने परिवेश की ध्वनियों से प्रभावित होता है और ये स्वतंत्र रूप में अलग से उच्चरित नहीं की जा सकतीं इसलिए इनको आश्रित कहा जाता है। आइए अब अनुस्वार तथा अनुनासिक दोनों प्रकार की ध्वनियों की प्रकृति को विस्तार से समझा जाए।

अनुस्वार : अनुस्वार वे आश्रित नासिक्य व्यंजन है जिनका उच्चारण अपने परिवेश की ध्वनियों से निर्धारित होता है। स्वनिमिक व्यवस्था के संदर्भ में इनकी स्थिति 'आर्कीस्वनिम' (N*) की

है इसीलिए संस्कृत के वैयाकरणों ने लेखन व्यवस्था में इनके लिए [-] चिह्न बनाया है। आर्कीस्वनिम के रूप में विद्यमान अनुस्वार हिंदी में विभिन्न परिवेशों में प्रायः ङ्, ञ, ण्, न् तथा म् के रूप में उच्चरित किया जाता है। हिंदी में अनुनासिक दो परिवेशों में प्रतिफलित होता है :

1. शब्दांत में (V — #) : अनुस्वार सदैव 'म्' के रूप में उच्चरित होता है जैसे स्वयं ~ स्वयम्, अहं ~ अहम् वयं ~ वयम्, सं ~ सम् आदि।

2. व्यंजनपूर्व (V — C) : इस स्थिति में अनुस्वार (N*) अपने परवर्ती व्यंजन से प्रभावित होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कि यह अपने परवर्ती व्यंजन के वर्ग के नासिक्य व्यंजन का रूप ग्रहण कर लेता है जैसे:

1.	पंकज	~	पड्.कज	गंगा	~	गड्.गा
	पंखा	~	पड्.खा			
2.	चंचल	~	चञ्चल	पंजाब	~	पञ्जाब
	पंछी	~	पञ्छी			
3.	कंटक	~	कण्टक	कंठी	~	कण्ठी
	अंडा	~	अण्डा			
4.	शांत	~	शान्त	गांधी	~	गान्धी
	हिंदी	~	हिन्दी	पंथ	~	पन्थ
5.	चंपा	~	चम्पा	खंभा	~	खम्भा
	अंबा	~	अम्बा			

इन दोनों नियमों को हम इस प्रकार लिखकर दिखा सकते हैं :

(1) अनुस्वार (N*) → [नासिक्य + द्वयोष्ठ्य] / स्वर — #
अर्थात् अनुस्वार जब शब्दांत (#) में आता है तो द्वयोष्ठ्य नासिक्य अर्थात् 'म्' बन जाता है।

(2) अनुस्वार (N*) → [नासिक्य + तुल्य स्थानीय] / स्वर — व्यं
अर्थात् व्यंजन पूर्व इसकी स्थिति अपने परवर्ती व्यंजन के अनुरूप तुल्य स्थानीय हो जाती है।

अनुस्वार संबंधी ये नियम किसी एक शब्द के भीतर (रूपिम सीमा के अंतर्गत) भी काम करते हैं तथा रूपिम सीमा के बाहर भी। अर्थात् अंतरा-रूपिमिक स्थिति (Intra-morphemic situation) में भी तथा अंतर-रूपिमिक स्थिति (Inter-morphemic situation) में भी जैसे :

(1) अंतरा-रूपिमक स्थिति : अर्थात् किसी एक ही रूपिम के अंतर्गत जैसे :

पंकज	~	पड्.कज	चंपा	~	चम्पा
पंडित	~	पण्डित	अहं	~	अहम्
कंचन	~	कञ्चन			

(2) अंतर-रूपिमिक स्थिति

(क) सं (सम्)	+ तोष	~	सन्तोष	+ चय	~	सञ्चय
	+ कट	~	सड्.कट	+ बोधन	~	सम्बोधन

+ गीत ~ सड्.गीत　　+ गीत ~ सड्.गीत

(ख) अहं (अहम्) + ता ~ अहन्ता　　+ भाव ~ अहम्भाव

+ कार ~ अहड्.कार

(3) य, र, ल, व ध्वनियों के पूर्व जब अनुस्वार आता है या दूसरे शब्दों में अनुस्वार के बाद परवर्ती व्यंजन के रूप में यदि य, र, ल, व व्यंजन होते हैं तो वह उनके अनुनासिक रूप में भी उच्चरित हो सकता है और तुल्य स्थानीय व्यंजन के रूप में भी जैसे :

सं (सम्) + यम ~ सँय्यम　　+ लाप ~ सँल्लाप

+ योग ~ सँय्योग　　+ रचना ~ सँर्रचना

+ वाद ~ सँव्वाद

केवल 'राज' धातु के पूर्व अनुस्वार 'म्' रूप में प्रतिफलित होता है जैसे : सम्राट, साम्राज्य आदि।

कुछ विद्वानों की आपत्ति : कुछ विद्वानों ने ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जहाँ अनुस्वार तथा अनाश्रित नासिक्य ध्वनियाँ परस्पर व्यतिरेक में दिखाई देती हैं जैसे :

(क) चम्का ~ चंगा　　(ख) चिन्मय ~ वाड्.मय

सन्की ~ शंका　　सन्मति ~ दिड्.नाद

जान्की ~ जंघा

'क' वर्ग के शब्दों चमका, सनकी, जानकी के उच्चारणात्मक रूपों को ये विद्वान चम्का, सन्की तथा जान्की मान लेते हैं। तथा वर्ग 'ख' के उदाहरणें के आधार पर वे यह कहना चाहते हैं कि व्यंजन पूर्व स्थिति में केवल 'तुल्यस्थानीय नासिक्य' ही नहीं आते बल्कि 'विषम स्थानीय नासिक्य' भी आ सकते हैं। अतः अनुस्वार का वितरण केवल V—C तक ही नहीं माना जा सकता।

समाधान : वस्तुतः इन विद्वानों की कठिनाई यही है कि ये शब्द की बाह्य संरचना या उसके उच्चारणात्मक रूप तक ही अपने को सीमित किए रखना चाहते हैं। उपर्युक्त वर्ग 'क' के शब्दों के बारे में हम कह सकते हैं कि इन शब्दों की मूल संरचना चमका, सनकी या जानकी नहीं है बल्कि चम्का (च्+अ+य्+अ+क्+आ), सनकी (स्+अ+न्+अ+क्+ई) तथा (ज्+आ+न्+अ+क्+ई) है और 'मध्य-अ-लोप के नियम' (अ$\rightarrow\varnothing$ / VC—CV) के आधार पर मध्य के 'अ' का लोप हो गया है। स्पष्ट है कि इन सभी शब्दों की मूल संरचना में नासिक्य व्यंजन और उसके परवर्ती व्यंजन के बीच एक 'अ' की सत्ता है। यह तथ्य इस आधार पर प्रमाणित किया जा सकता है कि जिन शब्दों से ये शब्द बने हैं उन सबकी मूल संरचना में 'अ' विद्यमान था जैसे :

चमक+आ $\rightarrow$ चम्का　　जनक+ई $\rightarrow$ जान्की

सनक+ई $\rightarrow$ सन्की

यदि इन शब्दों की मूल संरचना में 'अ' की सतता मानी जाएगी तो निश्चित ही इन शब्दों को हम चंगा, रांका या जंघा के समकक्ष नहीं रख सकते जिनमें अनुस्वार तथा परवर्ती व्यंजन के बीच कोई भी स्वर नहीं आ रहा।

जहाँ तक 'ख-वर्ग' के शब्दों का प्रश्न है यदि ध्यान से देखा जाए तो इन शब्दों की मूल संरचना में 'नासिक्य व्यजन' की सत्ता है ही नहीं। उच्चारण स्तर पर जो नासिक्य व्यंजन यहाँ आए हैं वे संस्कृत के विशिष्ट संधि नियमों के कारण है। जैसेः

वाङ्.मय =	वाक्मय	समति	= सत्+मति
दिङ्.नाद =	दिक्नाद	चिन्मय	= चित्मय

वस्तुतः यहाँ संस्कृत की संधि के विशिष्ट नियम काम कर रहे हैं। स्पर्शी व्यंजन के बाद यदि कोई नासिक्य व्यंजन आता है तो वह अपने ही वर्ग के नासिक्य का रूप ले लेता है।

अनुनासिकताएँ : अनुनासिकता स्वरों का गुण है। नासिक्य रंजित स्वर ही अनुनासिक कहे जाते हैं। हिंदी में सभी मौखिक स्वर अनुनासिक हो सकते हैं जैसेः

अ ~ अँ	फँस, हँस	ऊ ~ ऊँ	ऊँट, मूँगा
आ ~ आँ	आँख, गाँव	ए ~ एँ	में, गेंद
इ ~ इँ	बिंदिया, सिंचाई	ऐ ~ ऐं	मैं, भैंस
ई ~ ईं	खींच, सींच	ओ ~ ओं	चोंच, गोंद
उ ~ उँ	कुँआ, उँगली	औ ~ औं	चौंकना, भौंकना

हिंदी में लिपि चिह्न के रूप में अनुनासिकता को चंद्र बिंदु [ँ] से लिखा जाता है। हाँ, यदि स्वर के ऊपर मात्रा चिह्न हो तो चंद्र बिंदु के स्थान पर इसे बिंदु से ही लिखे जाने की व्यवस्था है।

हिंदी में अनुनासिकता तीन संदर्भों में देखी जा सकती है :

1. विभक्तिपरक संदर्भ
2. स्वनिमिक संदर्भ
3. स्वनिक संदर्भ

1. **विभक्तिपरक संदर्भ :** इस संदर्भ में अनुनासिकता संज्ञा तथा क्रिया पदों को बहुवचन बनाने का कार्य करती है जैसे :

संज्ञा पद	चिड़िया	~	चिड़ियाँ	बहू	~	बहुएँ
	नदी	~	नदियाँ	बच्चे	~	बच्चों (तिर्यक रूप)
क्रिया पद	है	~	हैं	गयी	~	गयीं
	थी	~	थीं			

2. **स्वनिमिक संदर्भ :** हिंदी में मौखिक स्वर तथा अनुनासिक स्वर व्यतिरेक में भी आते हैं। देखिए निम्नलिखित न्यूनतम युग्म :

गोद	~	गोंद	भाग	~	भाँग
सास	~	साँस	आधी	~	आँधी
चौक	~	चौंक			

3. **स्वनिक संदर्भ :** हिंदी में कुछ शब्दों में अनुनासिकता केवल उच्चारण के स्तर पर ही कार्य करती है। नासिक्य व्यंजनों के परिवेश में मौखिक स्वर सानुनासिक हो जाते हैं जैसे :

नाम ~ (नाँम)   मान ~ (माँन)   कान ~ (काँन)

अनुनासिकता का विकास : प्राचीन आर्यभाषा से जब मध्यकालीन आर्यभाषा में जो परिवर्तन हुए उनके अंतर्गत जिन शब्दों के मध्य में 'व्यंजन-गुच्छ' थे वे सरलीकृत हो गए और आगे चलकर वहाँ एक ही व्यंजन रह गया। साथ ही संयुक्त व्यंजनों के पूर्व का ह्रस्व स्वर भी दीर्घ हो गया जैसे :

कर्म > कम्म > काम। यदि शब्द की संरचनाएँ व्यंजन गुच्छ में से एक व्यंजन अनुस्वार रहा था तो सरलीकरण की इस प्रक्रिया में पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ तो हुआ ही, नासिक्यीकृत (या अनुनासिक) भी हो गया। देखिए निम्नलिखित उदाहरण :

प्राचीन आर्यभाषा		मध्य आर्यभाषा		आधुनिक आर्यभाषा
सप्त	→	सत्त	→	सात
सत्य	→	सच्च	→	साँच
दन्त	→		→	दाँत
चन्द्र	→	चन्द	→	चाँद

कहने का तात्पर्य यही है कि हिंदी में अनुनासिकता का विकास मुख्य रूप से अनुस्वार से ही हुआ है। अर्थात् ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में केवल उन्हीं शब्दों में अनुनासिकता मिलती है जिनके मूल रूपों में 'अनुस्वार' की स्थिति रही थी। जैसे दंत > दाँत, चंद्र > चाँद, भंग > भाँग, कंटक > काँटा आदि। यदि प्राचीन आर्यभाषा के शब्दों में अनुस्वार नहीं था तो मध्य आर्यभाषा (पालि, प्राकृत) में वे भले ही नासिक्य गुच्छ के रूप में परिवर्तित हो गए पर आधुनिक आर्यभाषा में अनुनासिकता दिखाई नहीं देती। जन्म, कर्म शब्द इसी प्रकार के उदाहरण हैं।

समस्या : कुछ विद्वानों ने अनुस्वार और अनुनासिकता को लेकर यह समस्या उठाई है कि हिंदी में अनुस्वार और अनुनासिकता के कारण शब्दों को जो दो भिन्न वर्ग प्राप्त होते हैं उनको मूल रूप से दो भिन्न-भिन्न शब्द माना जाए अथवा एक ही शब्द के दो भिन्न रूप। उदाहरण के लिए निम्नलिखित 'अ' तथा 'ब' वर्ग के शब्दों को देखिए :

अ-वर्ग (अनुस्वार)		**ब-वर्ग (अनुनासिक)**
चंद्र	~	चाँद
भंग	~	भाँग
दंत	~	दाँत
कंप	~	काँप

कुछ भाषाविदों की राय है कि इनको दो अलग-अलग शब्द माना जाना चाहिए। यदि इन शब्दों को भिन्न माना जाएगा तो इसका अर्थ यह होगा कि हमें अनुनासिकता को भी मूल रूप में स्वीकार करना होगा, अनुस्वार से व्युत्पन्न अभिलक्षण के रूप में नहीं। इस बात के समर्थन में इन विद्वानों ने दो तथ्य दिए हैं:

(1) हिंदी के कुछ शब्दों में अनुनासिकता का विकास अनुस्वार के परिवर्तन का परिणाम नहीं है। वह स्वतः विकसित हुयी है जैसे :

श्वास	>	साँस	सर्प	>	साँप
हास्य	>	हँसी	ग्राम	>	गाँव

ऐसे शब्दों के लिए अनुस्वार की संकल्पना करना उचित नहीं है।

(2) हिंदी में कुछ शब्द ऐसे भी मिलते हैं जिनके मूल रूपों में कोई नासिक्य ध्वनि भले ही रही है पर जिसके चंद्र > चाँद, दंत > दाँत जैसे युग्म नहीं मिलते। अतः उन्हें भी अनुस्वार से नहीं जोड़ा जाना चाहिए। जैसे धूम्र > धुँआ, भ्रमर > भौंरा आदि।

इन मान्यताओं के विरोध में विद्वानों का मत है कि दंत और दाँत एक ही शब्द के दो भिन्न रूप हैं। 'यदि ऐसा न होता तो हम न केवल दंत-दाँत, कंप-काँप, भंग-भाँग की ध्वन्यात्मक प्रकृति को ठीक से समझ सकते हैं और न नीचे दिए गए शब्द युग्मों को — पाण्डे - पाँडे, हाण्डी ~ हाँडी, भोण्डा ~ भोंड़ा।' (श्रीवास्तव-1995)

8.5.4 महाप्राण ध्वनियों की समस्या

हिंदी के महाप्राण व्यंजनों को लेकर यह समस्या है कि इनको अल्पप्राण व्यंजन तथा 'ह' व्यंजन का संयुक्त रूप माना जाए (जैसे ख = क्+ह, फ = प्+ह) अथवा एकल स्वनिम। कुछ भाषाविदों की मान्यता है कि हिंदी के महाप्राण व्यंजनों को एकल स्वनिम न मानकर अल्पप्राण व्यंजन तथा 'ह' व्यंजन का संयुक्त रूप मानना चाहिए। इस सिद्धांत को मानने का कारण यह है कि हिंदी में कुछ शब्द ऐसे मिल जाते हैं जहाँ महाप्राणत्व की सत्ता 'व्यंजक गुच्छ' के रूप में दिखाई देती है जैसे :

(i) अब + ही = अभी   जब + ही = जभी

तब + ही = तभी   कब + ही = कभी

अर्थात् इन सभी शब्दों में 'भ' व्यंजन का जन्म 'ब' (अल्पप्राण व्यंजन) तथा 'ह्' व्यंजन के संयोग से हुआ है। लगभग ऐसी ही स्थिति 'म' तथा 'न' के महाप्राण रूपों में भी दिखाई देती है जैसे :

तुम + ही = तुम्हीं   इन + ही = इन्हीं

(ii) इसके अलावा हिंदी में कुछ ऐसे शब्द भी मिलते हैं जो विकल्प रूप में प्रयुक्त होते हैं और यह स्पष्ट करते हैं, कि 'ह' तथा महाप्राण में कुछ न कुछ संबंध अवश्य है जैसे:

गदहा ~ गधा   गदही ~ गधी

(iii) इसके अलावा हिंदी में धीमी गति से और तीव्र गति से उच्चारण करने में भी 'ह' तथा महाप्राण के बीच संबंध दिखाई देता है। उदाहरण के लिए अगर निम्नलिखित वाक्यांशों को धीमी गति और तीव्र गति से पढ़ा जाए तो अंतर सुना जा सकता है जैसे :

धीमी गति से	**तीव्र गति से**
मन ही मन	मन्ही मन
नहा-धोकर चलो	न्हा-धो कार चलो।

इस प्रकार ऊपर के सभी उदाहरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि हिंदी में महाप्राणत्व 'अल्पप्राण+ह' का संयुक्त रूप है। परंतु ऐसा सच नहीं है। अनेक भाषाविदों ने एक ओर अनेक प्रकार के प्रयोगशाला-परीक्षणों के आधार पर इस मान्यता को गलत सिद्ध कर दिया है तो दूसरी ओर अनेक स्वनिमिक नियमों के आधार पर भी यह सिद्ध करने की कोशिश की गई है कि महाप्राणत्व वस्तुतः अल्पप्राण व्यंजन तथा 'ह' व्यंजन का संयोग नहीं है। आइए हम इन्हीं मान्यताओं पर विचार करें :

(i) **अ-लोप के नियम के आधार पर :** अ-लोप के नियम के बारे में आप जान ही गए हैं कि हिंदी में शब्द के मध्य में आने वाले उस 'अ' का उच्चारण में सदैव लोप हो जाता है जिसके पूर्व एक स्वर तथा व्यंजन हों तथा उसके बाद व्यंजन तथा दीर्घस्वर हों :

$$\text{अ} \rightarrow \varnothing / VC — CV$$

इसका अर्थ यह हुआ कि लुप्त होने वाले अ के पहले तथा बाद में (परवर्ती) हमेशा कोई 'एकल स्वनिम' होना चाहिए, अर्थात् 'व्यंजन-गुच्छ' का वहाँ कोई अवकाश नहीं है। देखिए निम्नलिखित उदाहरण :

	मूलशब्द	अ-लोप वाले शब्द
1.	सड़क (स्+अ+ड़+अ+क)	सड़कें (स्+अ+ड़्+अ+क्+एँ)
2.	नमक (न्+अ+म्+अ+क)	नमकीन (न्+अ+म्+अ+क्+ई+न)
3.	वापस (व्+आ+प्+अ+स)	वापसी (व्+आ+प्+अ+स्+ई)
4.	फिसल (फ्+इ+स्+अ+ल)	फिसला (फ्+इ+स्+अ+ल्+आ)

उपर्युक्त सभी शब्दों में जहाँ अ-लोप दिखाई दे रहा है वहाँ उसका पूर्ववर्ती और परवर्ती व्यंजन 'व्यंजन गुच्छ' न होकर एकल स्वनिम ही है।

इसके विपरीत नीचे के शब्दों पर ध्यान दीजिए। इन सभी शब्दों में व्यंजन गुच्छ आ रहे हैं। यहाँ अ-लोप की स्थिति नहीं होती जैसे :

पूर्ववर्ती व्यंजन-गुच्छ

दर्शन (द्+अ+र्+श+अ+न) → दर्शनों (द्+अ+र्+श+**अ**+न्+ओं)

बंदर (ब्+अ+न्+द+अ+र) → बंदरों (ब्+अ+न्+द+**अ**+र्+ओं)

बिस्तर (ब्+इ+स्+त्+अ+र) → बिस्तरों (ब्+इ+स्+त्+**अ**+र्+ओं)

पुस्तक (प्+उ+स्+त्+अ+क)→ पुस्तक (प्+उ+स्+त्+**अ**+क्+एँ))

इन शब्दों में 'अ-लोप' इसलिए नहीं हुआ क्योंकि 'अ' व्यंजन के पूर्व व्यंजन-गुच्छ आ रहा है। इसी तरह 'अ' के बाद में यदि व्यंजन-गुच्छ आता है तो भी 'अ' स्वर का लोप नहीं होता जैसे :

पर्ववर्ती व्यंजन गुच्छ

परामर्श (प्+अ+र्+आ+म्+अ+र्+श) → परामर्शों (प्+अ+र्+आ+म्+**अ**+र्+श्+ओं)

प्रयत्न (प्+र्+अ+य्+अ+त्+न) → प्रयत्नों (प्+र्+अ+य्+**अ**+त्+न+ओं)

भुजंग (भ्+उ+ज्+अ+ड्.+ग) → भुजागों (भ्+उ+ज्+**अ**+ड्.+ग्+ओं)

शतरंज (श्+अ+त्+अ+र्+अ+ञ+ज) → शतरंजों (श्+अ+त्+**अ**+र्+अ+ञ+ज्+ओं)

पूर्ववर्ती तथा परवर्ती व्यंजन गुच्छ

इसी तरह निम्नलिखित शब्दों में जहाँ पूर्ववर्ती और परवर्ती व्यंजन-गुच्छ हैं 'अ-लोप का नियम' लागू नहीं होता :

निर्लज्ज (न्+इ+र्+ल्+**अ**+ज्+ज) → निर्लज्जों (न्+इ+र्+ल्+**अ**+ज्+ज+ओं)

निर्द्वंद्व (न्+इ+र्+द्+व्+**अ**+न्+द्+व) → निर्द्वंद्वी (न्+इ+र्+द्+व्+**अ**+न्+द्+व्+ई)

महाप्राण व्यंजन तथा अ-लोप का नियम

अब अ-लोप के नियम को हम उन शब्दों पर देखेंगे जहाँ महाप्राण ध्वनियाँ आती हैं। यदि महाप्राण व्यंजनों को 'व्यंजन गुच्छ' माना जाएगा तो यहाँ भी अ-लोप नहीं होना चाहिए और यदि अ-लोप होता है तो इसका अर्थ यही होगा कि 'महाप्राण व्यंजन' (चाहे वह 'अ' के पूर्ववर्ती हो या परवर्ती) 'एकल-स्वनिम' ही हैं। देखिए निम्नलिखित उदाहरण :

पूर्ववर्ती महाप्राण व्यंजन

मूल शब्द	**अ-लोप वाले व्युत्पन्न शब्द**
कथन (क्+अ+थ्+अ+न) →	कथनी (क्+अ+थ्+अ+न+ई)
सुभग (स्+उ+भ्+अ+ग) →	सुभगा (स्+उ+भ्+अ+ग्+ई)
बैठक (ब्+ऐ+ठ्+अ+क) →	बैठकें (ब्+ऐ+ठ्+अ+क्+एँ)
साधक (स्+आ+ध्+अ+क) →	साधक (स्+आ+ध्+अ+क्+ओं)

परवर्ती महाप्राण व्यंजन

समझ (स्+अ+म+अ+झ) → समझा (स्+अ+म्+अ+झ्+आ)
चरख (च्+अ+र्+अ+ख) → चरखा (च्+अ+र्+अ+ख्+आ)
परख (प्+अ+र्+अ+ख) → परखा ((प्+अ+र्+अ+ख्+आ)

उपर्युक्त उदाहरणें में हम देख सकते हैं महाप्राण व्यंजन के होने पर भी अ-लोप हो रहा है अतः यह कहा जा सकता है कि हिंदी में महाप्राण ध्वनियाँ व्यंजन-गुच्छ के रूप में सिद्ध नहीं हैं।

(ii) **शब्दारंभ में दो संयुक्त व्यंजन :** हिंदी-शब्दों की आक्षरिक संरचना पर यदि ध्यान दिया जाए तो हम देखते हैं कि हिंदी में शब्द के आरंभ में 'दो व्यंजनों' से अधिक व्यंजन नहीं आते। (अपवाद - स्त्री) जैसे :

(क) प्यार (प्+य्+आ+र) ग्यारह (ग्+य्+आ+र्+अ+ह)
स्नान (स्+न्+आ+न) क्या (क्+य्+आ)
प्रसाद (प्+र्+अ+स्+आ+द)

इसी तरह महाप्राण व्यंजनों से बनने वाले संयुक्त व्यंजनों के उदाहरण भी हिंदी में मिल जाते हैं जैसे :

(ख) ख्याति (ख्+य्+आ+त्+इ) भ्रमण (भ्+र्+अ+म्+अ+व)
ध्रुव (ध्+र्+उ+व) ध्वजा (ध्+व्+अ+ज्+आ)

यदि महाप्राण व्यंजनों को हम 'व्यंजन-गुच्छ' मान लेते हैं तब हिंदी के इन (ख) वर्ग के शब्दों में यह मानना होगा कि शब्दारंभ में तीन व्यंजन आ रहे हैं जो हिंदी की प्रकृति के विपरीत होगा। अतः यही मानना अधिक संगत है कि हिंदी में महाप्राण व्यंजन 'एकल-स्वनिम' है।

(iii) इसके अलावा हिंदी में क्रिया-धातुओं के अंत में 'ना' के पूर्व कभी भी 'व्यंजन गुच्छ' नहीं आते केवल 'एकल व्यंजन' ही आते हैं जैसे करना, चलना, जाना, देना, लेना आदि। इसी तरह 'ना' के पूर्व केवल अल्पप्राण व्यंजन ही नहीं, महाप्राण व्यंजन भी आ सकते हैं जैसे - देखना, रखना, पढ़ना, बैठना, आदि।

ये उदाहरण यही सिद्ध करते हैं कि हिंदी के महाप्राण व्यंजन एकल स्वनिम ही हैं।

8.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य था आपको हिंदी भाषा की 'ध्वनि-व्यवस्था' से परिचित कराना। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आपको संक्षेप में हिंदी के स्वरों तथा व्यंजनों का परिचय दिया गया, हिंदी की खंडेतर ध्वनियों - अनुतान, बलाघात, संहिता, मात्रा, अनुनासिकता आदि का भी संक्षेप में परिचय कराया गया। इसके अलावा आपको परंपरागत स्वनिम विज्ञान तथा निष्पादक स्वनिम विज्ञान की अवधारणाओं का तुलनात्मक परिचय दिया गया है और यह भी स्पष्ट किया गया कि निष्पादक स्वनिम विज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर हम किसी भी भाषा की स्वनिमिक व्यवस्था को विस्तार से और गहराई से स्पष्ट कर सकते हैं। निष्पादक स्वनिम विज्ञान के अंतर्गत इसकी प्रमुख संकल्पनाओं 'अभिव्यक्ति के विभिन्न स्तर', अभिलक्षण', 'स्वनिमिक नियम' तथा उनकी 'लेखन विधि' का भी आपने विस्तृत जानकारी प्राप्त की।

इकाई के अंतिम खंड में हिंदी की प्रमुख स्वनिमिक समस्याओं - अ-लोप, ड़/ढ़ की समस्या, नासिक्य ध्वनियों की समस्या तथा महाप्राण व्यंजनों की समस्या का भी विस्तृत परिचय दिया गया। इन नियमों को जानकर अब अहिंदी भाषी छात्र शब्दों का मातृभाषा-भाषी के समान उच्चारण कर सकते हैं।

8.7 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

(1) हिंदी के स्वर और व्यंजन ध्वनियों का परिचय दीजिए।

(2) हिंदी स्वनिमिक व्यवस्था की प्रमुख समस्याओं की चर्चा कीजिए।

2. टिप्पणी लिखिए।

(1) खंडेतर ध्वनियाँ

(2) स्वनिम की संकल्पना

(3) हिंदी के महाप्राणा स्वनिम

(4) ध्वनि व्यवस्था और लेखन

(5) हिंदी में अ-लोप

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

अभ्यास-1

निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइएः

i) विवृत स्वरों के उच्चारण में मुँह सबसे कम खुलता है। (सही/गलत)

ii) सघोष ध्वनियों के उच्चारण में स्वर तंत्रियाँ झंकृत होती हैं। (सही/गलत)

iii) 'अक्षर' में सबसे मुखरित ध्वनि स्वर होती है। (सही/गलत)

iv) हिंदी-अंग्रेज़ी भाषाएँ 'तान भाषाएँ' कहलाती हैं। (सही/गलत)

v) दो ध्वनियों के बीच होने वाले क्षणिक-विराम का संबंध संहिता या संगम से है। (सही/गलत)

vi) अनुस्वार एक स्वर है तथा अनुनासिकता व्यंजनों का गुण है। (सही/गलत)

vii) 'अल्प प्राण' व्यंजनों के उच्चारण में मुख से कम मात्रा में वायु निकलती है। (सही/गलत)

viii) य, र, ल, व व्यंजन अन्तस्थ व्यंजन हैं। (सही/गलत)

अभ्यास-2

निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) अथवा गलत (×) के निशान लगाइए।

i) समान वातावरण में परस्पर व्यतिरेक में आने वाली ध्वनियाँ स्वनिम कहलाती हैं। (सही/गलत)

ii) चॉमस्की के निष्पादक व्याकरण के प्रभाव से जो स्वनिम विज्ञान विकसित हुआ उसे निष्पादक स्वनिम विज्ञान कहा जाता है। (सही/गलत)

iii) 'आंतरिक संरचना' का संबंध भाषा-भाषी के मन से होता है। (सही/गलत)

iv) 'व्यवस्थित स्वनिकीय स्तर' की तुलना में 'भौतिक स्वनिकीय स्तर' अधिक अमूर्त है। (सही/गलत)

v) निष्पादक स्वनिम विज्ञान में स्वनिमिक नियमों को अभिलक्षणों द्वारा स्पष्ट किया जाता है। (सही/गलत)

vi) द्विचर अभिलक्षणों से ध्वनि का एक ही गुण पता चलता है। (सही/गलत)

vii) परंपरागत स्वनिम विज्ञान ने स्वनिम की सत्ता को ही नकार दिया। (सही/गलत)

viii) निष्पादक स्वनिम विज्ञान ने जिस अमूर्त स्तर की संकल्पना की उसे 'व्यवस्थित स्वनिमिक स्तर' कहा गया। (सही/गलत)

अभ्यास-3

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) परंपरागत स्वनिम विज्ञान पर .... संप्रदाय के सिद्धांतों का प्रभाव पड़ा है। (निष्पादक भाषा विज्ञान/संरचनात्मक भाषा विज्ञान)

ii) नासिक्यीकृत स्वरों को ही .... कहा जाता है। (नासिक्य स्वर/अनुस्वार/अनुनासिक)

iii) हिंदी की महाप्राण ध्वनियाँ .... हैं। (व्यंजन गुच्छ/एकल स्वनिम)

iv) हिंदी में अनुनासिकता का विकास .... से हुआ है। (नासिक्य व्यंजन/अनुस्वार)

v) हिंदी में क्रिया रूपों में 'ना' के पहले कभी भी .... नहीं आता। (व्यंजन गुच्छ/एकल स्वनिम)

उत्तर

अभ्यास-1

(i) गलत,
(ii) सही,
(iii) सही,
(iv) गलत,
(v) सही,
(vi) गलत,
(vii) सही,
(viii) सही

अभ्यास-2

(i) सही,
(ii) सही,
(iii) सही,
(iv) गलत,
(v) सही,
(vi) गलत,
(vii) गलत,
(viii) सही

अभ्यास-3

(i) संरचनात्मक भाषा-विज्ञान,
(ii) अनुनासिक,
(iii) एकल स्वनिम,
(iv) अनुस्वार,
(v) व्यंजन गुच्छ

इकाई 9 रूप, शब्द और पद

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 रूप की संकल्पना
  9.2.1 रूप के प्रकार
  9.2.2 रूपसाधक और शब्दसाधक रूप
9.3 रूपिम की संकल्पना
9.4 शब्द
  9.4.1 शब्द और अर्थ का संबंध
  9.4.2 शब्द निर्माण की आवश्यकता और प्रक्रिया
9.5 शब्द के प्रकार
9.6 शब्द वर्ग
9.7 पद की संकल्पना
9.8 सारांश
9.9 अभ्यास प्रश्न

9.0 उद्देश्य

भाषा की रचना को हम मुख्य रूप से दो भागों में बाँटते हैं। रूप विज्ञान में विभिन्न रूपों से शब्दों की रचना की जाती है। वाक्य विज्ञान इन शब्दों से पदबंध की रचना करते हैं जिससे वाक्य का एक समन्वित अर्थ प्रकट होता है। पद रूप विज्ञान और वाक्य विज्ञान का सेतु है जो वाक्य में शब्दों के प्रयोग की स्थिति स्पष्ट करता है। इस इकाई में हम रूप, शब्द, पद इन दोनों की संकल्पनाओं की चर्चा कर रहे हैं। ये विषय अपने में बहुत विशाल हैं इस कारण इस इकाई में केवल महत्वपूर्ण बातें संक्षेप में कही गई हैं। इस इकाई को पढ़ने से पहले आपसे अपेक्षा की जाती है कि आप हिंदी व्याकरण का सामान्य परिचय प्राप्त करें।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- रूप की परिभाषा कर सकेंगे और शब्द रचना में रूपों के प्रकार्य समझा सकेंगे,
- शब्द में विभिन्नता को समझने के लिए रूपिम की संकल्पना का सहारा ले सकेंगे,
- शब्द और अर्थ के संबंध की व्याख्या कर सकेंगे,
- शब्द की रचना की प्रक्रिया बता सकेंगे और विभिन्न प्रकार के शब्दों के प्रकारों की चर्चा कर सकेंगे,
- पदबंध के स्तर पर शब्द के वर्गों का प्रकार्य समझ सकेंगे, और
- पद की संकल्पना समझाते हुए वाक्य में पद का कार्य बता सकेंगे और पद परिचय दे सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

भाषा की संरचना के संदर्भ में ये दृष्टव्य है कि अर्थहीन ध्वनियों से रूप नामक सार्थक ध्वनियों से खण्डों की रचना होती है। इन रूपों से शब्दों का निर्माण किया जाता है जो वाक्य में पद के रूप में अर्थ की सृष्टि करते हैं। इस तरह ध्वनि विज्ञान भाषा का प्रारंभिक

स्तर है जिसमें अर्थ का द्योतन नहीं होता। अर्थ युक्त भाषा की शुरुआत रूपों से ही होती है। रूपों से मूल शब्द व्युत्पन्न शब्द, संयुक्त शब्द और समस्त शब्द आदि की रचना होती है। इस तरह रूप विज्ञान भाषा में शब्द रचना का परिचय देने वाला प्रारंभिक स्तर है। इस इकाई में आप रूप और शब्द के संबंधों को और शब्द और अर्थ के संबंधों को समझेंगे और रूपों और शब्दों के प्रकारों का सोदाहरण परिचय प्राप्त करेंगे।

भाषा में उक्ति या अभिव्यक्ति का तत्व है वाक्य। वाक्य शब्दों को किन्हीं व्याकरणिक नियमों के अनुसार प्रस्तुत करता है जिससे इन शब्दों के परस्पर संबंध से वाक्य का एक समन्वित अर्थ निकल सके। अगर कोई व्यक्ति भाषा के व्याकरण से परिचित न हो और 8-10 शब्दों को उच्चरित कर दे तो यह वाक्य नहीं बनेगा। कहीं-कहीं इससे अर्थ का थोड़ा आभास मिल सकता है जैसे लड़का, डंडा, कुत्ता, मार्ग क्योंकि इन शब्दों का एक संदर्भ संबंध है लेकिन अक्सर ऐसे शब्दों के साथ रखने पर कोई अर्थ नहीं निकलता जैसे मैं किताब लिखी, आप हो आते। इस तरह के गूढ़ विचारों को प्रकट करने के लिए हमें वाक्यगत संबंधों को स्पष्ट करना होगा : जैसे मैंने वह पुस्तक पढ़ी जो आपने मुझे दी थी आदि। इसी संदर्भ में पद शब्द का महत्व है। शब्द वाक्य में जिस रूप में प्रयुक्त होते हैं उन्हें हम पद कहते हैं और पद उस शब्द की सारी व्याकरणिक विशेषताओं को प्रकट करता है। इस इकाई के अंत में हम पद की चर्चा कर रहे हैं जिससे शब्द और वाक्य का संबंध स्पष्ट हो जाए।

भाषा शब्द निर्माण के लिए अनेक प्रकार की युक्तियों का सहारा लेते हैं क्योंकि हमें अपने जीवन में नयी-नयी संकल्पनाओं को प्रकट करने के लिए शब्दों की आवश्यकता होती है। इस संदर्भ में विविध प्रत्ययों से विविध अर्थों में शब्दों की रचना करते हैं। जैसे जिम्मा और उससे बनने वाले शब्द जिम्मेदार, जिम्मेदारी, गैर-जिम्मेदारी आदि शब्द अलग-अलग अर्थ प्रकट करते हैं। इसी तरह विभिन्न शब्द खण्डों से हम संयुक्त शब्दों का निर्माण करते हैं या दो शब्दों को जोड़कर उससे समस्त शब्दों का प्रयोग करते हैं। इस इकाई में हम शब्द रचना की प्रक्रिया के संदर्भ में शब्द निर्माण के इन सब प्रकारों की भी चर्चा कर रहे हैं।

9.2 रूप की संकल्पना

'रूप' से हमारा तात्पर्य शब्द के ध्वन्यात्मक रूप (form) से नहीं है। इस (form के) अर्थ में हम भाषा में स्वरांत शब्द, व्यंजनांत शब्द आदि की चर्चा कर सकते हैं।

रूप विज्ञान के संदर्भ में रूप (morph) से हमारा तात्पर्य सार्थक शब्द खंडों से है। शब्द एक या अधिक रूपों से निर्मित होता है। 'घोड़ा', 'सड़क', 'आम' आदि शब्दों में केवल एक ही रूप है, क्योंकि इन शब्दों को हम सार्थक खंडों में विभाजित नहीं कर सकते। अन्य शब्दों में एक से अधिक खंड होते हैं। जैसे :

दो रूप : लघुता, बचपन
यहाँ 'ता', 'पन' आदि रूप क्रमशः लघु होने या बच्चा होने का भाव सूचित करते हैं।
तीन रूप : भावुक्ता, क्रमिकता, अनेकता, अशक्तता

यहाँ /उक/ ~ /इक/ प्रत्यय संज्ञा को विशेषण बनाते हैं और /ता/ भाववाचक संज्ञा का निर्माण करता है। अंतिम दो शब्दों में /अन्/ और /अ/ क्रमशः 'एकता' और 'शक्तता' का विलोम बनाते हैं।

चार रूप : अन्यायपूर्वक (अ+न्याय+पूर्व+क)
गैर-जिम्मेदारी (ग़ैर+जिम्मा+दार+ई)

ऊपर के उदाहरणों में हमने जितने रूप पहचाने हैं, वे सभी सार्थक हैं और लघुतम हैं, क्योंकि इनका फिर सार्थक खंडों में विभाजन नहीं हो सकता। इस तरह रूप की परिभाषा यों है :

भाषा के लघुतम सार्थक खंडों को हम रूप कहते हैं।

इस अर्थ में /बच्चा/ और /-पन/ दोनों ही रूप हैं, भले हम 'बच्चा' को शब्द भी कहें। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि सारे स्वतंत्र या मुक्त रूप शब्द भी हैं। जो रूप स्वतंत्र या मुक्त नहीं हैं, वे अन्य रूपों के साथ आकर बड़े शब्दों की रचना करते हैं।

9.2.1 रूप के प्रकार

रचना के आधार पर

हमने ऊपर उल्लेख किया था कि एक या अधिक रूपों से शब्दों की रचना होती है। 'घोड़ा', 'सड़क', 'पेड़' आदि शब्द एक ही रूप से निर्मित हैं। इस कारण ये रूप शब्द के तौर पर स्वतंत्र रूप से व्यववहृत होते हैं। इसकी तुलना में 'ता', 'पन' आदि रूप स्वतंत्र रूप से व्यवहृत नहीं हो सकते। इन्हें शब्द निर्माण के लिए अन्य किसी रूप का सहारा चाहिए। इन्हें हम बद्ध (या अस्वतंत्र) रूप कहते हैं। प्रायः सभी प्रत्यय बद्ध रूप होते हैं। शब्द रचना में यह भी देखा गया है कि किन्हीं शब्दों की रचना में स्वतंत्र, मूल रूप (एक रूप वाला शब्द) भी बद्ध रूप की तरह व्यवहृत होता है। जैसे :

मूल रूप	**बद्ध रूप**	**व्युत्पन्न शब्द**
घोड़ा	घुड़	घुड़सवार, घुड़साल
बच्चा	बच	बचपन, बचकाना

इस तरह मुक्त (स्वतंत्र) और बद्ध रूपों से शब्द निर्माण की प्रक्रिया में कई प्रकार के संयोजन संभव हैं। जैसे :

मुक्त	+	मुक्त	देशप्रेम	(तत्पुरुष समास)
बद्ध	+	मुक्त	निर्बल	(उपसर्ग से विलोम की रचना)
मुक्त	+	बद्ध	लघुता	प्रत्यय से भाववाचक संज्ञा की रचना)
बद्ध	+	बद्ध	अनुज, विवाह	

प्रकार्य के आधार पर

दो मुक्त रूपों से बनने वाले शब्दों में हम समस्त शब्द या संयुक्त शब्द कह सकते हैं। इनकी रचना और प्रयोग की विशेषताओं के बारे में आगे देखेंगे।

बद्ध रूपों से निर्मित शब्दों में हम प्रायः एक मूल शब्द के साथ प्रत्ययों का उपयोग करते हैं। प्रत्यय वास्तव में बद्ध रूपों का पर्याय है। भाषाविज्ञान ऐसे प्रत्ययों को स्थान की दृष्टि से तीन वर्गों में बाँटता है :

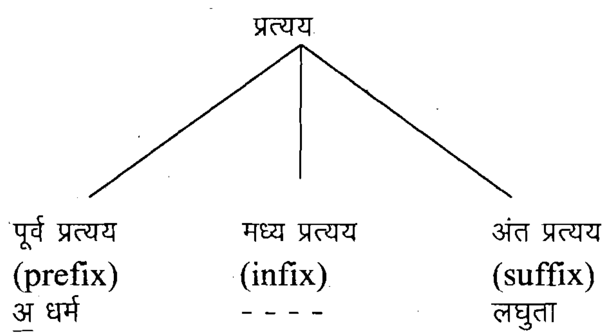

हिंदी में मध्य प्रत्यय नहीं है और परंपरा से पूर्व प्रत्यय को उपसर्ग कहा जाता है। हम परंपरा का निर्वाह करते हुए आगे की चर्चा में क्रमशः उपसर्ग और प्रत्यय शब्द का ही प्रयोग करेंगे और दोनों के लिए 'रूप' शब्द का प्रयोग करेंगे।

हिंदी के रूप दो प्रकार के हैं। 'कर' धातु से 'करे', 'किया', 'करता' आदि क्रिया रूपों का निर्माण होता है। 'लड़की' शब्द से बहुवचन 'लड़कियाँ', कारक युक्त शब्द 'लड़कियों' आदि का निर्माण होता है। इस तरह संज्ञा, क्रिया आदि शब्दों से वचन, कारक, काल, पक्ष आदि **व्याकरणिक सूचनाएँ** प्रकट करने के लिए हम रूपसाधक (inflectioanl) रूपों का प्रयोग करते हैं।

रूपों का दूसरा प्रकार शब्द साधक प्रत्यय हैं। धन (संज्ञा) से हम 'धनी' (विशेषण, व्यक्ति) शब्द का निर्माण करते हैं, 'परेशान' (विशेषण) से हम 'परेशानी' (भाववाचक संज्ञा) का निर्माण करते हैं। इस तरह एक शब्द से रूपों के प्रयोग से हम भिन्न किंतु संबद्ध अर्थ वाले कई शब्दों की रचना करते हैं। शब्द निर्माण के लिए व्यवहृत इन रूपों को ही हम शब्द साधक (derivational) रूप कहते हैं।

9.2.2 रूपसाधक और शब्दसाधक रूप

हिंदी के सभी बद्ध रूपों को हम निम्न प्रकार से एक तालिका से दिखा सकते हैं :

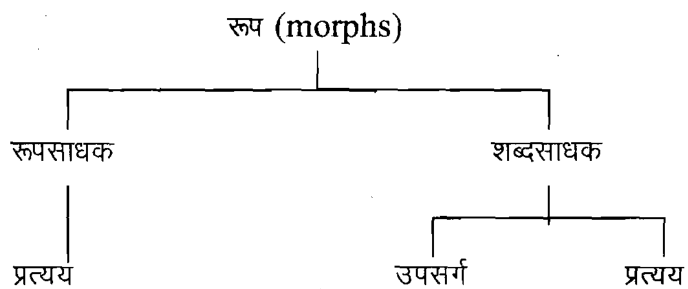

रूपसाधक प्रत्यय (inflectional suffixes)

व्यारकण ग्रंथ रूपसाधन को रूपसिद्ध भी कहते हैं। हमने उल्लेख किया था कि रूपसाधक प्रत्यय शब्द में व्याकरणिक अर्थ जोड़ते हैं। दूसरे शब्दों में ये प्रत्यय शब्द की व्याकरणिक कोटियों का अर्थ द्योतित करते हैं। ये व्याकरणिक कोटियाँ सात हैं :

संज्ञा/सर्वनाम की कोटियाँ :

i)	लिंग	-	शेर–शेरनी, लड़का–लड़की
ii)	वचन	-	बच्चा–बच्चे, लड़की–लड़कियाँ
iii)	पुरुष	-	मैं – तुम – वह
iv)	कारक	-	कमरा-कमरे (में), कमरे-कमरों (में)

क्रिया की कोटियाँ :

i)	लिंग	-	जाता–जाती, था–थी
ii)	वचन	-	गया–गये, था–थे
iii)	पुरुष	-	जाउँ–जाओ–जाए, हूँ–हो–है
iv)	पक्ष	-	जाता–गया
v)	काल	-	है–था, किया है – किया था
vi)	वृत्ति	-	जाइए–जाएँ

रूपसाधक प्रत्यय संख्या में सीमित होते हैं। इनसे शब्दों की रूपावलियाँ (paradigms) बनती हैं और व्याकरण ग्रंथ रूपावलियों की विस्तृत सूचना देते हैं। संस्कृत में संज्ञा की रूपावली को

'शब्द' कहते हैं। 'राम' शब्द का नमूना देखिए जिसमें लिंग, वचन और कारक की कोटियों का समावेश है :

वचन

संज्ञा पुल्लिंग	**कारक**	**एक**	**द्वि**	**बहु**
	कर्ता	रामः	रामौ	रामाः
	कर्म	रामं	रामौ	रामान्
	करण	रामेण	रामाभ्याम्	रामयोः
	स्रंप्रदान	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः आदि

हिंदी में क्रिया की रूपावली देखिए जिसमें काल लिंग, वचन और पुरुष का निर्देश है :

लिंग वंचन

भविष्यत् काल

पुरुष	पुल्लिंग		स्त्रीलिंग	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
उत्तम	जाऊँगा	जाएँगे	जाऊँगी	जाएँगी
मध्यम	जाओगे		जाओगे	
अन्य	जाएगा		जाएगी	

इस क्रिया के रूपों का भी विश्लेषण कर लें। दोनों लिंगों में एकवचन में /ऊँ/ प्रथम पुरुष, /ओ/ मध्यम पुरुष और /ए/ अन्य पुरुष सूचित करते हैं। /एँ/ दोनों लिंगों में बहुवचन का सूचक है। गा/गे/गी भविष्यत् काल के प्रत्यय हैं और क्रमशः पुल्लिंग एकवचन, पुल्लिंग बहुवचन और स्त्रीलिंग का द्योतन करते हैं। ये प्रत्यय अपवादों और उपवर्गों को छोड़कर समस्त क्रिया शब्दों में इन्हीं व्याकरणिक अर्थों में प्रयुक्त होते हैं।

हम निश्चित नियमों द्वारा क्रिया के प्रत्ययों को पहचान और विश्लेषित कर सकते हैं। जैसे :

धातु	+	**पक्ष**	+	**काल**
देख		ता (पूर्ण) है आदि		
		आ (पूर्ण)		

'आ', 'कर', 'जा' आदि धातुओं के साथ प्रत्यय जुड़ते समय धातुओं में कुछ रूप– स्वनिमिक परिवर्तन हो जाते हैं जैसे :

आ + आ →	आया	(य् का आगम)
कर + आ →	किया आदि	(किय् रूप)
जा + आ →	गया	(गय् रूप)

लेकिन हिंदी के सर्वनाम शब्दों का रूप विश्लेषण इतना आसान नहीं है। उदाहरण को लिए संबंध कारक रूपों को देखिए :

मैं + का	-	मेरा
तुम + का	-	तुम्हारा
वह + का	-	उसका

इस कारण सर्वनाम के रूपों का विश्लेषण किये बिना रूपावली प्रस्तुत करना ही व्यावहारिक हल है। सर्वनामों की रूपावली का नमूना देखिए :

1	2	3	4	5
सर्वनाम +	ने +	को +	से, (में,, पर)+	का, के, की
मैं	मैंने	मुझको	मुझसे	मेरा, मेरे, मेरी
तू	तूने	तुझको	तुझसे	तेरा, तेरे, तेरी
तुम	तुमने	तुमको	तुमसे	तुम्हारा, तुम्हारे, तुम्हारी
आप	आपने	आपको	आपसे	
वह	उसने	उसको	उससे	
यह	इससे	उसको	उससे	
हम	हमने	हमको	हमसे	हमारा, हमारे, हमारी
वे	उन्होंने	उनको	उनसे	
ये	इन्होंने	इनको	इनसे	
जो (एकवचन)	जिसने	जिसको	जिससे	
कौन (बहुवचन)	किसने	किसको	किससे	
क्या (एकवचन)	-	किसको	किससे	
जो (बहुवचन)	जिन्होंने	जिनको	जिनसे	
कौन (बहुवचन)	किन्होंने	किनको	किनसे	
क्या (बहुवचन)	-	-	किनसे	

इस तालिका में देखें कि सर्वनामों के विकारी रूपों और परसर्गों को मिलाकर एक शब्द के रूप लिखा जाता है।

शब्दसाधक रूप (derivative suffixes)

शब्दसाधन और व्युत्पादन दोनों पर्याय हैं। विशेषण से गुण सूचित करने वाले भाववाचक संज्ञा शब्द, स्थिति का अभाव या निषेध करने वाले शब्द, संज्ञा से उसकी स्थिति सूचित करने वाले विशेषण शब्द आदि उपसर्गों और प्रत्ययों से व्युत्पन्न होते हैं। इस चर्चा का यह अर्थ नहीं है कि शब्द साधन में शब्द वर्ग बदल जाना अनिवार्य है। वास्तव में व्युत्पादन या शब्द साधन दो तरह के हैं :

अंतर व्युत्पादन में शब्द का वर्ग नहीं बदलता। जैसे :

संज्ञा :	गुण - दुर्गुण	अवसर - सुअवसर	बच्चा - बचपन
विशेषण :	कुशल - अकुशल	बृहत् - बृहत्तम	मग्न - निमग्न
क्रिया :	करना - कराना		

अंतः व्युत्पादन में शब्द का वर्ग बदल जाता है। जैसे :

क्रिया से संज्ञा :	अनबन	फिसलन भरती	
क्रिया से विशेषण :	नासमझ	अचूक	समझदार
संज्ञा से विशेषण :	निडर	दयालु	दुखी
संज्ञा से क्रिया (नामधातु):	हथियाना	ललचाना	विचारना
संज्ञा से अव्यय :	आजन्म	असमय	क्रमशः

प्रत्यय

हिंदी में प्रत्ययों की संख्या सैकड़ों में है। ये प्रत्यय स्रोत की दृष्टि से संस्कृत (तत्सम), हिंदी (तद्भव) और अरबी-फ़ारसी मूल के हैं। प्रत्यय युक्त शब्द यौगिक रूढ़ होते हैं, अर्थात् हम अपनी इच्छा से किसी भी शब्द के साथ कोई प्रत्यय नहीं लगा सकते। दयालु, कृपालु के सादृश्य में हम *अनुकंपालु, *ममतालु जैसे शब्द नहीं बना सकते। -इत, -इक आदि प्रत्यय बहु प्रचलित हैं, जबकि ईला (जहरीला) जैसे प्रत्यय सीमित शब्दों के साथ ही आते हैं। इसका यह भी तात्पर्य है कि प्रत्यय और मूलशब्द एक स्रोत के हों। जैसे संस्कृत तत्सम शब्द

अन्+आदर-अनादर। यह बात काफ़ी हद तक सही है, लेकिन भाषा की जीवंतता के कारण कई प्रत्यय व्यापक प्रयोग में आ जाते हैं और कई जगह व्यवहार में आते हैं। जैसे बेलाग (उर्दू बे + हिंदी लाग), गर्माहट (उर्दू गर्म + हिंदी आहट) आदि।

आगे हम तीनों स्रोतों के रूपों को तालिका बद्ध रूप में दे रहे हैं।

उपसर्ग			प्रत्यय		
संस्कृत	**हिंदी**	**उर्दू**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**उर्दू**
अ(अस्वस्थ) अन्(अनादर) सु(सुपुत्र) कु(कुपुत्र)	अन(अनपढ़)	बे(बेकार) ना(नालायक) ला(लाजवाब) बद(बदनाम)	इत(व्यवस्थित) इक(सामाजिक) ई(दुखी) आ(प्रिया) इका(नायिका) य(सौंदर्य) ता(एकता) ईय(भारतीय)	पन(बचपन) आर(लुहार) (<संस्कृत कार) आस(मिठास) स(सपूत) क(कपूत) नी(मोरनी) आवट(बनावट) आवना(डरावना) आकू(लड़ाकू)	ई(खुशी) मंद(फ़ायदे मंद) दार(ज़िम्मेदार)

9.3 रूपिम की संकल्पना

अब तक हमने मूल शब्द, उपसर्ग, प्रत्यय आदि रूपों की चर्चा की। प्रायः यह देखा गया है कि एक रूप (morph) अपने परिवेश के कारण भिन्न-भिन्न रूपों (forms) में आते हैं। जैसे 'उत्' उपसर्ग के कई रूप हैं :

सत् (सत्पुरुष) सद् (सद्भाव) सन् (सन्मार्ग) सच् (सच्चरित्र)

ये चारों केवल स्वनिमिक दृष्टि से भिन्न हैं, प्रकार्य और अर्थ की दृष्टि से एक हैं। सत् के चारों रूपों का एक ही अर्थ है - 'अच्छा'। इस कारण हम इन्हें एक ही वर्ग में रखेंगे और उसके भिन्न रूपों का विवरण देंगे। 'अच्छा' के अर्थ में (सत्) एक रूपिम है और उसके चार व्यक्त रूप रूपिम के संरूप कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में व्यक्त सभी संरूपों के समूह को रूपिम कहा जाता है। रूपिम एक अमूर्त संकल्पना है और संरूप वास्तविक, व्यक्त रूप। इस कारण जहाँ रूप अविकारी हो, वहाँ भी हम अमूर्त रूपिम की कल्पना करते हैं, क्योंकि शब्दों की रचना रूपिमों से ही व्याख्यायित की जाती है, जिससे विभिन्न परिवेशों में रूपों की भिन्नता को समझा जा सके।

रूपिम की संकल्पना की आवश्यकता क्या है? यह हम लोगों के संज्ञान (cognition) के स्वरूप का द्योतक है। 'मेज़' एक संकल्पना है, अमूर्त है, इसके व्यक्त, वास्तविक रूप कई हो सकते हैं। लोहे की मेज़ हो या लकड़ी की या पत्थर की, उसका आकार गोल, चौकोर, लंबा जो भी हो, सबको हम 'मेज़' नाम से ही पहचानते हैं। भाषा में भी हम निश्चित अर्थ में मूल संकल्पना को पहचान कर उसे व्यक्त रूपों के तौर पर व्यवहार में लाते हैं। ऊपर के उदाहरण फिर देखिए :

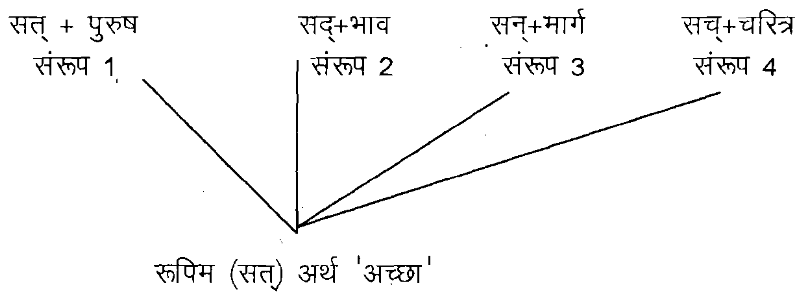

जब रूपिम तथा उसके संरूपों की पहचान कर ली जाती है, तो चारों का परिवेश (कौन-सा, कहाँ आए) स्पष्ट किया जाता है। भाषाविज्ञान की भाषा में इसे वितरण (distribution) कहा जाता है। जैसे :

रूपिम	संरूप		परिवेश
'सत्'	सत्	-	क, त, प आदि अघोष ध्वनियों से पहले
	सद्	-	ग, द, ब आदि घोष ध्वनियों से पहले
	सन्	-	न आदि नासिक्य व्यंजनों से पहले
	सच्	-	च से पहले

रूपिम अमूर्त है, तो 'सत्' को रूपिम क्यों कहते हैं? हमें पहचान के तौर पर रूपिम को कोई नाम देना होता है। आमतौर सबसे प्रचलित संरूप को ही रूपिम का नाम देता जाता है। जब /सत्/ को हम रूपिम की संज्ञा देते हैं, तो /सत्/ के आधार पर ही रूप परिवर्तन निर्धारित करते हैं। याने /स्/ का /द्/, /न्/, /च्/ आदि में परिवर्तन हुआ। इस कारण /त्/ को इस रूपिम विश्लेषण के संदर्भ में रूपस्वनिम (morphophoneme) कहा जाता है। अर्थात् (सत्), (उत्) आदि सभी रूपों में /त्/ का यही वितरण होगा, जैसे उत्पत्ति, उद्भव आदि उदाहरण स्पष्ट करते हैं। इस तरह रूपिम, संरूपों का वितरण, रूपस्वनिम आदि शब्द निर्माण तथा शब्दों के ध्वन्यात्मक रूप को स्पष्ट रूप से समझने में सहायक होते हैं। समान नियमों के आधार पर हम प्राक्, दिक्, तत् आदि रूपों से बनने वाले शब्दों के रूप (form) को आसानी से समझ सकते हैं।

संस्कृत के वैयाकरणों ने रूपस्वनिमिक प्रक्रिया को संधि के नियमों से स्पष्ट किया। इस दृष्टि से कह सकते हैं कि वैयाकरणों में गहरी भाषावैज्ञानिक सूझ थी। उनका रूप विश्लेषण अत्यंत वैज्ञानिक है। एक अंतर अवश्य है। संस्कृत में केवल दो शब्दों की संधि के संदर्भ में ही नियम बनाए गए हैं। लेकिन आधुनिक भाषाओं के विश्लेषण में कई तरह के शब्दों की रचना को समझने के लिए रूपिम की संकल्पना की आवश्यकता है। जैसे हिंदी के बहुवचन रूपों को हम संधि से समझा नहीं सकते। हिंदी के बहुवचन रूपिम (ए) का विवरण देखिए :

रूपिम	संरूप	वितरण
(ए)	पुल्लिंग शब्द - आ→ए	विकारी आ कारांत शब्द जैसे लड़का, कमरा
अर्थ-बहुवचन	∅[1]	अन्य सभी शब्द (राजा, आदमी, चाकू, पति)
	स्त्रीलिंग शब्द - एँ	i) व्यंजनांत शब्द (किताब, बहन,)
		ii) आकारांत, उ/ऊ कारांत शब्द (भाषाएँ, बहुएँ)[2]
	याँ	इ/ई कारांत शब्द (जातियाँ, लड़कियाँ)[2]
	˘	(अनुनासिकता) या कारांत (चिड़ियाँ).

1. इस चिह्न का तात्पर्य यह है कि ऐसे शब्दों में बहुवचन में कोई परिवर्तन नहीं होगा। इसे 'शून्य रूप' कहा जाता है।
2. बहू से बहुवचन बनाते समय स्वर ह्रस्व हो जाता है। यही बात 'लड़की' पर भी लागू होती है। इसकी चर्चा संज्ञा के संदर्भ में अलग से की जाएगी।

आपने ध्यान दिया होगा कि कितने संक्षेप में हिंदी के बहुवचन शब्दों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। संक्षिप्त, सीमित नियम याद रखने में आसान होते हैं। इसलिए प्रस्तुतीकरण भाषा सीखने वालों के लिए लाभदायक हैं।

9.4 शब्द

रूप की चर्चा के संदर्भ में हमने शब्दों की रचना की भी चर्चा की, क्योंकि रूप शब्द के घटक हो। शब्द की रचना के संदर्भ में ही रूपों की सार्थक चर्चा हो सकती है। लेकिन अभी हमने

शब्दों की परिभाषा नहीं की है। एक परिभाषा तो यही है कि शब्द रूपों से निर्मित सार्थक, स्वतंत्र खंड हैं। लेकिन हम शब्द पहचानें कैसे? उच्चरित भाषा ध्वनियों का प्रवाह है और आमतौर पर शब्दों के बीच में कोई अंतराल (pause) भी नहीं सुनाई देता। उच्चरित भाषा में स्थानापत्ति (substitutability) का सिद्धांत हमें शब्द पहचानने में मदद देता है, जैसे :

मैंने नाश्ते में दो पराँठे खाए

मैंने नाश्ते में दो कचौरियाँ खाईं।

यहाँ 'पराँठे' और 'कचौरियाँ' स्थानापत्ति द्वारा भिन्न वाक्य की सृष्टि करते हैं। लेकिन इस संदर्भ में हम 'अंडा' और 'अंडे' (जैसे एक अंडा खाया/दो अंडे खाए) दोनों को दो अलग शब्द मानें या एक। इसी तरह शब्द को पहचानने में भी लेखन भी हमारा साथ नहीं देता। गुजराती भाषा में परसर्ग को संज्ञा के साथ जोड़कर लिखा जाता है जैसे घरमां (घर में)। क्या यहाँ गुजराती के लिए एक शब्द है और हिंदी के संदर्भ में दो शब्द? हिंदी में ही हम 'राम को', 'उसको' जैसे शब्दों में 'को' के प्रयोग में अंतर देखते हैं।

विद्वानों का मत है कि शब्द दो प्रकार के होते हैं। संज्ञा, विशेषण, क्रिया आदि शब्द निश्चित तथा स्पष्ट अर्थ व्यक्त करते हैं। ये कोशीय (lexical) शब्द कहलाते हैं। ये शब्द काफ़ी हद तक सार्वभौम होते हैं, अर्थात घोड़ा, बुरा, दौड़ना आदि शब्द संसार की लगभग सारी भाषाओं में मिलते हैं। शब्दों का दूसरा वर्ग है प्रकार्यात्माक (functional) शब्द जो भाषा की संरचना की प्रकृति के आधार पर भाषाओं में अलग-अलग होते हैं। हिंदी में 'तो' का प्रयोग है, अंग्रेज़ी में नहीं, अंग्रेज़ी में 'the' का प्रयोग है, हिंदी में नहीं। हिंदी और अंग्रेज़ी में योजक क्रमशः शब्द 'and' तथा 'और' हैं। संस्कृत में प्रत्यय जैसा युक्त रूप (clitic) 'च' दोनों संज्ञाओं में जुड़ता है। इसी तरह तमिल में दोनों संज्ञाओं में 'उम्' जुड़ता है। जैसे :

राम और सीता - रामश्चा - रामनुम् सीतयुम्

प्रकार्यात्मक शब्दों के संदर्भ में भाषाओं में बहुत भिन्नता है। किसी भाषा में प्रकार्यात्मक शब्द स्वतंत्र रूप से आते हैं, तो किसी भाषा में ये प्रत्यय के रूप में मूल शब्द में जुड़ जाते हैं। संस्कृत तथा तमिल आदि द्रविड भाषाओं में विभक्तियाँ शब्द का अंग बनकर आती हैं। इसलिए संस्कृत भाषा को रूपरचना के आधार पर संश्लिष्ट (synthetic) भाषा कहा जाता है। इसकी तुलना में हिंदी और अंग्रेज़ी में to, in, an, को, से, में, पर आदि स्वतंत्र रूप विकसित हो गए। इसलिए इन भाषाओं को (analytic) भाषा कहा जाता है। इस तरह भाषाओं में शब्द रचना के संदर्भ में व्यापक रूप से विविधता दिखाई देती है। एक भाषा जिस अर्थ को स्वतंत्र शब्द से प्रकट करती है, उसे दूसरी भाषा प्रत्ययों से या शून्य से व्यक्त करती है। साधारणतया सारी भाषाओं में बहुवचन शब्द प्रत्यय जोड़ने से बनता है, लेकिन मलय भाषा में बहुवचन के लिए पुनरुक्त शब्द का उपयोग होता है। जैसे :

मलय भाषा

इस कारण शब्द के लिए कोई सार्वभौम परिभाषा देना कठिन है। इतना ही कह सकते हैं कि शब्द भाषा की सार्थक, स्वतंत्र इकाई है।

9.4.1 शब्द और अर्थ का संबंध

हमने दो प्रकार के शब्दों की चर्चा की - कोशीय शब्द और प्रकार्यात्मक शब्द। प्रकार्यात्मक शब्दों के अर्थ को हम भाषा की व्याकरणिक संरचना के संदर्भ में ही समझ सकते हैं और भाषा के प्रयोगों में ही इनके प्रकार्य को देख सकते हैं। 'और', 'या', 'लेकिन', 'इसलिए', 'के लिए' जैसे कुछ शब्दों के समान शब्द कई भाषाओं में देखे जा सकते हैं। फिर भी इनके विविध प्रकार्यों को हम भाषा विशेष में ही समझ सकते हैं।

कोशीय शब्द वस्तु जगत और भाव जगत की ज्ञात संकल्पनाओं का अर्थ द्योतित करते हैं! भौतिक परिवेश, संस्कृति और जीवन शैली में अंतर के कारण भाषाओं की शब्दावली में भी अंतर आता है। अंग्रेज़ के लिए सिंदूर, जूठन आदि अपरिचित संकल्पनाएँ हैं, हिंदी भाषी के लिए Ball, Mass आदि अपरिचित हैं। भाषाओं में शब्दावली में अंतर के और भी कई कारण हैं। इसे जानने से पहले हमें शब्द और अर्थ के संबंध को समझना होगा।

आमतौर पर हमारी यह धारणा है कि हर शब्द का एक अर्थ होता है और हर अर्थ के लिए एक शब्द। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि प्रायः सभी प्रचलित शब्दों का एक अर्थ क्षेत्र होता है जिसमें अर्थ का विस्तार होता जाता है। 'आना' को ही लें। इसके अर्थात् संबंध कितने सारे हैं। नींद आती है, रेलगाड़ी में चलते स्टेशन आते हैं, हमें किसी पर तरस आता है या किसी काम में अड़चनें आती हैं। 'आना' की ये अर्थच्छटाएँ सभी भाषाओं में किसी **एक** समान शब्द से व्यक्त नहीं होतीं। जैसे अंग्रेज़ी में feel sleepy, reach a station, face problems आदि में 'come' का इस्तेमाल नहीं होता। इसी तरह 'बात' शब्द को लें। इसके बीसियों अर्थ हैं, जिन्हें प्रयोग के संदर्भ में ही देखा जा सकता है। जैसे :

वाह, क्या बात है!
कोई बात नहीं बनी।
मेरी उनसे बात नहीं हुई।
क्या बात कर रहे हो?
अच्छी बात है
मैं एक बात कहना चाहूँगा।

अच्छे शब्दकोश शब्द के ऐसे सभी प्रमुख प्रयोगों को अर्थ के तौर पर समाविष्ट करते हैं। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि शब्द का निश्चित अर्थ क्या है? अक्सर यह कहा जाता है कि भाषा में 'पूर्ण पर्याय' बिलकुल नहीं होते। अर्थात् सामान्य बोलचाल में दोनों पर्याय कभी हर जगह समान रूप से व्यवहृत नहीं होते। हिंदी में पिता, बाप दोनों पर्याय हैं, लेकिन आज 'बाप' का प्रयोग अनादर या तिरस्कार का भाव प्रकट करने के लिए होने लगा है। इस तरह भाषा धीरे-धीरे मितव्ययता के सिद्धांत का पालन करने लगती है।

स्कूली व्याकरण अक्सर इसी बात के दोषी हो जाते हैं। "व्यावहारिक हिंदी व्याकरण और रचना" (एन सी ई आर टी, 1995) में सरिता को नदी का पर्याय बताया गया है, जबकि लेखक द्वय यह भी उल्लेख करते हौ - "पर्यायवाची शब्दों को मिलते-जुलते अथवा समानार्थी रूप में ही समझना चाहिए।" पर्याय तो वे ही शब्द हो सकते हैं, जो एक ही संकल्पना (सांकेतिक वस्तु या भाव - referent) का अर्थ द्योतित करें। मिलते-जुलते शब्दों को एक जगह रखकर उनके अर्थ सामीप्य का विश्लेषण करने वाला ग्रंथ पर्याय कोश नहीं, बल्कि Thesauras कहलाएगा, जिसके बारे में आप कोशविज्ञान नामक इकाई में पढ़ेंगे।

विलोम (antonym) : विलोम की परिभाषा देना बहुत कठिन कार्य है। व्याकरण ग्रंथ विलोम के नाम से जो उदाहरण देते हैं, उन पर ज़रा नज़र डाल लें :

(i) उपस्थिति-अनुपस्थिति : इसमें विपरीत स्थिति का बोध होता है, जैसे स्विच के आन-आफ़ स्थिति हो। अन्य उदाहरण है स्त्री-पुरुष, खाली-भरा, असली-नकली आदि।

(ii) अच्छा-बुरा : इन दोनों शब्दों का ध्रुवीय संबंध है। इसलिए हर बिंदु के एक तरफ़ 'अच्छा' है तो दूसरी तरफ 'बुरा'।

अच्छा → कम अच्छा → कम बुरा → बुरा

इसलिए जो अच्छा नहीं है, वह बुरा ही हो यह ज़रूरी नहीं है। यही नहीं, इनके अर्थ में समय तथा काल की सापेक्षता भी आ जाती है। इसका प्रयोग काफ़ी हद तक व्यक्तिनिष्ठ भी हो सकता है। जिस गाड़ी को एक आदमी 'बड़ी' कहे, उसे दूसरा 'छोटी' कह सकता है, क्योंकि दोनों उसे भिन्न दृष्टियों (ध्रुवों) से देख रहे हैं। अन्य उदाहरण हैं ठंडा - गरम, महँगा - सस्ता आदि।

(iii) 'खरीदना-बेचना' आदि एक ही घटना के दो पक्ष हैं, इन दोनों व्यापारों में परिपूरकता है। इन दोनों शब्दों को विलोम नहीं कहा जा सकता, जबकि व्याकरण ग्रंथ में भाई-बहन, माता-पिता, लेना-देना आदि शब्दों को विलोम कहा जाता है।

(iv) व्याकरण ग्रंथ 'काला' और 'सफ़ेद' को भी विलोम के भीतर रखते हैं। भौतिक विज्ञान की दृष्टि से इनमें विपरीत स्थिति तो दिखाई देती है। सफ़ेद सारे रंग फेंक देता है, काला सारे रंग जज़्ब कर लेता है। लेकिन आम आदमी के लिए ये भी दो रंग हैं, जैसे नीला, पीला, लाल आदि। इन शब्दों में शब्दों का सबंध वर्ण पट्टिका के सिद्धांत पर समझा जा सकता है। जैसे :

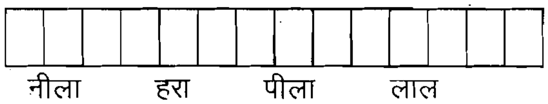

इस पट्टिका के सभी रंगों के नाम एक वर्ग स्थापित करते हैं और हर रंग का शब्द उस वर्ग या श्रेणी का सदस्य है। हर दो शब्द में अर्थ का अंतर तो है, लेकिन लाल-हरा आदि विलोम नहीं है। यातायात के संकेत के रूप में लाल और हरे रंग का वैपरीत्य पूर्णतः आरोपित है। संकेत के रूप में ये भले विलोम हों, रंग के नाम की दृष्टि से इनमें कोई विपरीतता नहीं है। इस तरह के अन्य शब्द हैं मौसमों के नाम, सवेरा, दुपहर, शाम, रात आदि दिन के भागों के नाम (जबकि रात-दिन में परिपूरकता का भी द्योतन होता है)। महानगर से अत्यंत छोटे गाँव तक निश्चित श्रेणी विभाजन है, लेकिन लोग शहर और गाँव के वैपरीत्य को प्रमुखता देते हैं। इसी तरह अरब पति से लेकर अति कंगाल तक एक बृहत श्रेणी है, लेकिन लोग सारे संसार को अमीर और गरीब की दो कोटियों में विभाजित करते हैं। इस वैपरीत्य का आधार भाषावैज्ञानिक नहीं, समाज-सापेक्ष है।

समरूपी शब्द (homonym)

कई ऐतिहासिक कारणों से कभी एक ही शब्द कई भिन्न और असंबद्ध अर्थ प्रकट करता है। जैसे मगर (लेकिन, एक प्राणी), पर (लेकिन, परसर्ग, पंख)। काव्य शास्त्र में इन शब्दों को श्लेष कहा गया है। श्लेष अलंकार में ऐसी उक्तियाँ दी जाती हैं, जिन्हें हम दोनों अर्थों में समझ सकते हैं। जैसे गुरु ने कहा - सैंधव (घोड़ा) लाओ और चेला नमक (सैंधव का दूसरा अर्थ) ले आया। यमक अलंकार में उसी शब्द का दोनों अर्थों में दो बार प्रयोग होता है। बिहारी का दोहा देखिए - कनक कनक से सौ गुना मादक है। अर्थात् सोना धतूरे से सौ गुना मादक है।

अनेकार्थी शब्द (polysemy के शब्द)

इस वर्ग के शब्द कई **संबद्ध** अर्थ देते हैं। यह भाषा की विशेषता है कि हम भिन्न स्थितियों में समान प्रकार्य के अर्थ के लिए शब्द का अर्थ विस्तार करते हैं। जैसे 'फल' वृक्ष के पूरे वर्ष के विकास का परिणाम है। इसी तरह हम कार्यों के 'फल' की बात करते हैं। 'स्तंभ' भवन का आधार है। हम व्यक्तियों को भी "आधुनिक मनोविज्ञान के स्तंभ" कहते हैं। ऐसे प्रयोगों को हम भाषा के मुहावरेदार प्रयोग कहते हैं। इसी प्रक्रिया से रूढ़ मुहावरे भी सिद्ध होते हैं। बच्चा 'घर का चिराग' होता है, कोई व्यक्ति किसी संस्था की 'जान' बन सकता है, कोई शहर किसी क्षेत्र का हृदय (हृत् प्रदेश heart land) कहला सकता है।

9.4.2 शब्द निर्माण की आवश्यकता और प्रक्रिया

भाषा की अर्थ की संरचना पर विचार करें, तो हमें दो बातें मालूम पड़ती हैं। भाषा के जो शब्द हैं, वे आवश्यकतानुसार नये अर्थ (या नई अर्थच्छटाएँ) अर्जित करते जाते हैं। जैसे 'पटल' का मूल अर्थ था 'तख्ता', लेकिन हम आधुनिक युग में संसद के संदर्भ में table के लिए (जो स्वयं ही अंग्रेज़ी में इस शब्द का नया प्रयोग है) 'पटल' का प्रयोग करने लगे हैं।

भाषा में नई संकल्पनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए हम नये शब्दों का भी निर्माण करते हैं। हम ग्रह शब्द से परिचित हैं। जब आधुनिक युग में मनुष्य ने राकेट की सहायता से अंतरिक्ष में 'ग्रह' जैसे खगोल पिंडों को स्थापित किया, तो उन्हें 'उपग्रह' की संज्ञा दी गई। इस तरह आधुनिक युग के संदर्भ में नये आविष्कारों और नई संकल्पनाओं के लिए शब्दों की आवश्यकता होती है। भाषा अपने साधनों से शब्दों का निर्माण करती है।

शब्द निर्माण की, विश्व स्तर पर प्राप्त विचारों को व्यक्त करने के लिए आसान और सहज प्रक्रिया है मूल भाषा के शब्दों को यथावत् ले लेना। इसे उधार (borrowing) की संज्ञा दी जाती है। हिंदी में रेडियो, टेलीविज़न, इंजन, कार आदि सैकड़ों शब्द गृहीत हुए हैं।

हम अंग्रेज़ी से अनगिनत शब्द नहीं ले सकते। अगर हम संकल्पना को लेकर उसे अपनी भाषा के तत्वों के माध्यम से व्यक्त करें, तो हिंदी भाषियों के लिए नए शब्द सुबोध भी लगेंगे। इसी संदर्भ में शब्द निर्माण की दूसरी प्रक्रिया है उधार अनुवाद। आधुनिक युग में socialism की संकल्पना सामने आई। social का अनुवाद हुआ समाज (समास में 'सामाजिक' लेने की आवश्यकता नहीं है - 'समाज' पर्याप्त है)। ism का अनुवाद है वाद। हिंदी में 'समाजवाद' शब्द बना। अब इस प्रकार के शब्दों के लिए 'वाद' सक्रिय रूप बन गया और राष्ट्रवाद, आधुनिकतावाद, मानवतावाद जैसे शब्दों का निर्माण सहज बन गया। Telecomunication के लिए दूर संचार, Election Commission के लिए निर्वाचन आयोग आदि, उधार अनुवाद के उदाहरण हैं।

जहाँ भारतीय मूल की संकल्पना हो वहाँ अपने साधनों से नये शब्द बना लिए जाते हैं जैसे पंचायत राज, कुटीर उद्योग, या कुछ अंश विदेशी भाषाओं से लेकर संकर शब्दों का निर्माण कर लिया जाता है, जैसे गोबर गैस, कंपनी अधिनियम, रोज़गार योजना आदि संकर शब्दों के उदाहरण हैं। शब्द और अर्थ के संदर्भ में इनके संबंध को स्पष्ट करने के लिए आर्थी संरचना (अर्थ की संरचना) की कुछ प्रक्रियाएँ विकसित की गई हैं। इनमें प्रमुख हैं पर्याय, विलोम, समरूपता और अनेकार्थता।

पर्याय (synonym) : समान अर्थ वाले शब्द पर्याय कहलाते हैं, जैसे कमल, पद्म आदि। आखिर पर्यायों की आवश्यकता क्यों होती है? पर्याय वास्तव में संरचना की मितव्ययता (economy) के सिद्धांत के विपरीत हैं। आखिर भाषा एक संकेत के लिए अनेक चिह्नों का निर्माण ही क्यों करे। वास्तव में संस्कृत से आए हुए पर्याय साहित्य की समृद्धि के द्योतक हैं। एक तरफ़ इन शब्दों से नयी अर्थच्छटाएँ जुड़ती हैं (जैसे पंक से निकला हुआ फूल पंकज आदि), दूसरी ओर काव्य की रचना में तुक के लिए विभिन्न आकारों के शब्दों का होना अवश्यंभावी भी है। यद्यपि संस्कृत में कमल, राजीव, जलज, नीरज, पंकज, वारिज, पद्म आदि कई नाम हैं, इनमें केवल 'कमल' मुख्य संकेतक शब्द है (सामान्य व्यवहार का शब्द है), शेष सभी केवल साहित्य में प्रयुक्त होते हैं।

आधुनिक हिंदी में पर्यायों की बहुलता का एक प्रमुख ऐतिहासिक कारण है। एक ही विचार के लिए हमारे पास तत्सम पर्यायों के अतिरिक्त तद्भव तथा उर्दू स्रोत का शब्द भी उपलब्ध है। कोड मिश्रण की स्थिति में वक्ता अंग्रेज़ी शब्द भी बोल जाते हैं। जैसे :

संस्कृत तत्सम	तद्भव	उर्दू स्रोत	अंग्रेजी
यत्न	जतन	कोशिश	try
प्रयत्न			
प्रयास			(संज्ञावत)
			<try करना
पुस्तक	पोथी	किताब	बुक
ग्रंथ			(बुक स्टोर जैसे शब्दों में)

ऐसे बहुल पर्याय भाषा पर भार के समान हैं। भाषा इस स्थिति में धीरे-धीरे कुछ पर्यायों को खत्म करती है। जैसे अब पोथी केवल साहित्यिक शब्द रह गया है। 'मयस्सर' (प्राप्त), 'मुनासिब' (उचित) जैसे उर्दू के शब्द प्रयोग से धीरे-धीरे हट रहे हैं।

9.5 शब्द के प्रकार

कई दृष्टियों से शब्दों के प्रकार की चर्चा कर सकते हैं। स्रोत के आधार पर तत्सम, तद्भव देशज आदि की चर्चा कर सकते हौ। अर्थ के आधार पर पर्याय, विलोम आदि की चर्चा कर सकते हैं। प्रकार्य के आधार पर संज्ञा, सर्वनाम आदि वर्गों की चर्चा कर सकते हैं। इसी इकाई में अन्यत्र इन सब प्रकारों की प्रसंगानुसार चर्चा की गई है। इस प्रकरण में हम केवल रचना के आधार पर शब्दों के प्रकारों की चर्चा करेंगे।

परंपरागत व्याकरण शब्दों को रचना के आधार पर तीन वर्गों में बाँटते हैं। **रूढ़** शब्द वास्तव में प्रत्यय रहित मूल शब्द हैं (स्वतंत्र रूप हैं)। **यौगिक** शब्द एक से अधिक रूपों से निर्मित शब्द हैं। यौगिक शब्दों के रचना की दृष्टि से दो प्रमुख भेद हैं :

i) दो स्वतंत्र शब्दों से निर्मित शब्द - संयुक्त शब्द और समस्त शब्द
ii) मूल शब्द से प्रत्ययों से निर्मित व्युत्पन्न शब्द

यौगिक रूढ़ : वे शब्द हैं, जो मूलतः यौगिक हैं, लेकिन अर्थ की दृष्टि से अब एक अखंडित शब्द के समान प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण के लिए चमक चम्+ (प्रकाश) + क से निर्मित है। लेकिन आज हम इसके रूपों का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं मानते। इसी तरह लेन-देन अब मूल शब्दों से भिन्न एक समन्वित अर्थ transaction का द्योतन करता है। इसे भी हम यौगिक रूढ़ मान सकते हैं, क्योंकि अब इस शब्द के 'लेन' या 'देन' का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं हैं। संयुक्त शब्द और समस्त शब्द में कुछ विद्वान अंतर नहीं करते। अंग्रेज़ी में इन दोनों के लिए compound word का ही प्रयोग होता है।

संयुक्त शब्द : संस्कृत भाषा में भी सरलीकरण के उद्देश्य से मूल क्रिया के स्थान पर संज्ञा+कर की रचना प्रचलित हो गई थी। हिंदी भाषा में यह विरासत के तौर पर चली आ रही है। संयुक्त शब्द की यह प्रक्रिया समास से इसे अलग करती है। हिंदी में अंग्रेज़ी मूल क्रिया के स्थान पर 'करना/होना' से सैकड़ों शब्द बनते हैं। जैसे :

help मदद करना, सहायता करना
try कोशिश करना, यत्न करना
rain बारिश होना
close बंद करना (सकर्मक) बंद होना (अकर्मक)
start शुरू करना, शुरू होना

वाक्य संरचना की दृष्टि से इन शब्दों के प्रयोग में एक कठिनाई है। अंग्रेज़ी में I helped Ram में कर्ता-क्रिया-कर्म का संयोजन है। यही वाक्य हिंदी में भिन्न रचना प्रदर्शित करता है। जैसे :

मैंने	राम	की	सहायता की।	
कर्ता	?		कर्म	क्रिया

क्या यहाँ हम 'राम की' को विशेषण मानें? यह विशेषण नहीं है, क्योंकि यह इस वाक्य का अनिवार्य घटक है। वास्तव में यह प्राप्तिकर्ता है। अंग्रेज़ी में प्राप्तिकर्ता का संदर्भ केवल रूपांतरण में ही दिखाई देता है। जैसे I gave help to Ram.

रचना की दृष्टि से समास से भिन्न कई शब्द हैं, जिन्हें हम संयुक्त शब्द की कोटि में रख सकते हैं। **प्रतिध्वनित शब्द** (echo words) में मूल शब्द का प्रतिध्वनि रूप जुड़ता है, जो अपने में निरर्थक है। जैसे चाय-वाय, प्यार-व्यार, दे दाकर, मार-मूरकर आदि। उलट-पुलटकर, अड़ोस-पड़ोस आदि शब्दों में शब्द का प्रतिबिंबित रूप तो है, लेकिन थोड़े ध्वनि परिवर्तन के साथ। **अनुकरणात्मक** शब्द मूल, रूढ़, शब्द भी हो सकते हैं, जैसे धम्म से गिरना, लकड़ी का खट् से टूटना। अधिकतर अनुकरणात्मक शब्द पुनरुक्त या द्वित्व होते हैं, जहाँ मूल रूप को दुहराने से नये शब्द का निर्माण होता है। खन् की आवाज़ से खनखनाना, मेंढक की टर् की आवाज़ से टरटराना, बकरी की 'मे मे' की आवाज़ से मिमियाना इसके उदाहरण हैं।

संयुक्त शब्दों का तीसरा प्रमुख वर्ग है **पुनरुक्त शब्द**। धीरे-धीरे, बैठे-बैठे, घर-घर आदि शब्द हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं की विशेषता है। इसका संबंध कुछ हद तक वचन से है। जैसे यह बात घर-घर पहुँच गई (अर्थात् सभी घरों में या हर घर में)। 'बैठे-बैठे' में उस व्यापार की दीर्घता का आभास होता है।

समास

समास में दो स्वतंत्र शब्दों का योग होता हे। दोनों शब्दों के बीच कोई न कोई व्याकरणिक संबंध होता है। इस तरह समास हमें वाक्य संरचना की ओर ले जाते हैं। समास मुख्य रूप से चार हैं।

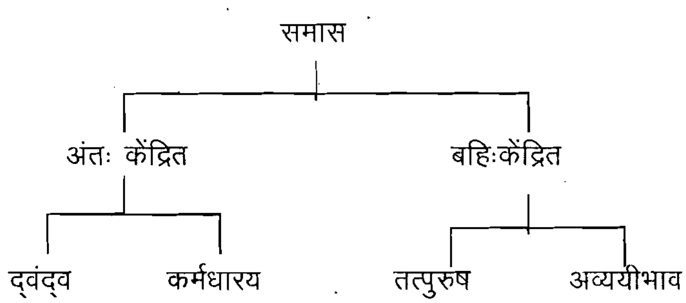

अंतःकेंद्रित रचनाएँ पदबंध के भीतर काम करती हैं, पदबंध के भीतर विस्तार करती हैं। द्वंद्व समास में दो शब्दों के बीच 'और' (समाहारा) 'या' (विकल्पन) का संबंध होता है। जैसे :

और : ऋषि-मुनियों का देश है भारत

या : मैं चाय-कॉफ़ी काछ भी ले लूँगा।

ध्यान दें कि समस्त शब्द प्रकार्य की दृष्टि से एक शब्द है, इस कारण लिंग-वचन-कारक के प्रत्यय केवल अंत में जुड़ेंगे। अगर समास का विग्रह हो जाए, तो ये दोनों दो स्वतंत्र शब्दों की तरह प्रयुक्त होंगे, जैसे

भारत के ऋषियों, मुनियों ने ......

कर्मधारय समास में विशेषण + संज्ञा की रचना है (या संज्ञा + विशेषण की)। जैसे परमात्मा, ऋषिवर। कर्मधारय के ही दो और रूप हैं। **द्विगु समास** में संख्यावाचक विशेषण और संज्ञा की रचना होती है, जैसे त्रिभुज, पंचशील आदि. बहुव्रीहि कर्मधरय और द्विगु दोनों से व्युत्पन्न शब्दों में अन्यार्थ की सिद्धि करता है। जैसे नीलकंठ (कर्मधारय) और त्रिलोचन (द्विगु) दोनों शिव जी के नाम हैं।

बहिःकेंद्रित रचना से पदबंधों का निर्माण होता है। केवल एक अपवाद है तत्पुरुष समास 'राजपुत्र' का, जिसमें संबंध कारक का लोप हुआ है। 'राजा का पुत्र' अंतःकेंद्रित रचना है। शेष सभी अन्य तत्पुरुष समास के शब्दों में परसर्ग का लोप दिखाई देता है, जो अन्य पदबंधों की रचना का द्योतक है। जैसे :

मदांध	-	मद से अंध
गृहप्रवेश	-	गृह में प्रवेश
अन्नदाता	-	अन्न को देने वाला आदि।

अव्ययीभाव समास में क्रिया विशेषण पदबंध की रचना होती है। जैसे यथा आवश्यकता - आवश्यकता के अनुसार।

9.6 शब्द वर्ग

शब्द की चर्चा समाप्त करते हुए हम शब्द वर्ग के बारे में अवलोकन करेंगे, क्योंकि शब्द वर्ग का संबंध वाक्य संरचना से है। हम जानते हैं कि शब्द ही पदबंध की संरचना करते हैं, जो वाक्य विन्यास की सबसे छोटी इकाई है।

परंपरागत व्याकरण हिंदी (और मूलतः संस्कृत भी) के संदर्भ में दो प्रकार के शब्दों की चर्चा करता है।

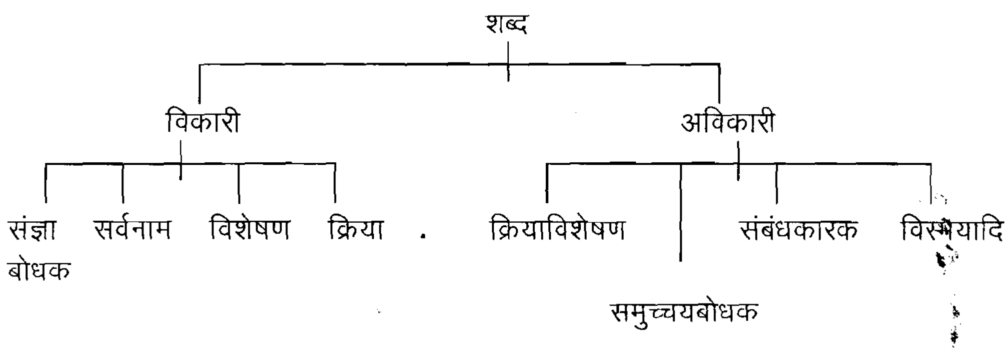

विकारी शब्दा व्याकरणिक कोटियों के कारण रूपसिद्ध होते हैं और लिंग, वचन, काल, पक्ष आदि व्याकरणिक विशेषताएँ प्रकट करते हैं। सर्वनाम या विशेषणयुक्त संज्ञा शब्द मुख्यतः संज्ञा पदबंध की रचना करते हैं जैसे कर्ता, कर्म, प्राप्तिकर्ता आदि। क्रिया शब्द क्रिया पदबंध की रचना करते हैं। कर्ता, कर्म, क्रिया आदि पदबंध वाक्य के अनिवार्य घटक हैं।

क्रियाविशेषण शब्द क्रियाविशेषण पदबंधों की रचना करते हैं, जो वाक्य के ऐच्छिक या अतिरिक्त घटक हैं। वास्तव में यहाँ, वहाँ अब, पहले, तेज़, जल्दी आदि मूल क्रियाविशेषण शब्द भाषा में बहुत सीमित हैं। अधिकतर क्रियाविशेषण पदबंध (चाकू से, घर में, तेज़ी से आदि) संज्ञा में परसर्ग जोड़ने से बनते हैं।

समुच्चयबोधक शब्द संयुक्त तथा मिश्र वाक्य के योजक शब्द हैं। संबंधकारक शब्द के लिए, के पीछे, के बाद, से पहले आदि परसर्ग युक्त पदबंधों की रचना करते हैं। विस्मयादिबोधक

शब्द (वाह! हाय! आदि) वास्तव में लघु वाक्य हैं1 इस तरह मूल क्रियाविशेषण शब्दों को छोड़ दें, तो शेष सभी अविकारी शब्द वाक्य संरचना के तत्व हैं। इसलिए आधुनिक भाषाविज्ञान इन्हें एक साथ प्रकार्यात्मक शब्द (function words) की संज्ञा देता है। अविकारी शब्दों के प्रयोग को हम वाक्य विन्यास के विश्लेषण के संदर्भ में ही अच्छी तरह जान सकते हैं।

9.7 पद की संकल्पना

एक वाक्य देखिए :

(क) उस लड़के ने कुत्तों को मारा।

इसमें क्या-क्या शब्द हैं? 'इस' मूलतः शब्द नहीं है, 'यह' का तिर्यक रूप है, 'लड़के' भी 'लड़का' का तिर्यक रूप है, जो /ने/ के कारण एकारांत में बदल गया है। इस वाक्य में आए हुए शब्दों के मूल रूप या कोशीय रूप इस तरह हैं :

(ख) यह, लड़का, ने, कुत्ते, को, मार

ये मूल शब्द साथ आने पर भी कोई समन्वित अर्थ नहीं दे पाते, जो वाक्य का गुण है। ये शब्द तभी वाक्य की सृष्टि कर सकेंगे, जब वे पहले दिए गए वाक्य के अनुसार वाक्यगत संबंध स्पष्ट करेंगे। शब्द स्तर पर वाक्य की विशेषताएँ प्रकट नहीं हो सकती। उदाहरण के तौर पर 'संज्ञा ' शब्द में वाक्य में कर्ता या कर्म का प्रकार्य वहन कर सकता है। परसर्गीय शब्द /ने/ तथा /को/ क्रमशः शब्द के व्याकरणिक अर्थ का द्योतन करते हैं। इस संदर्भ में हम कह सकते हैं कि वाक्य के घटक शब्द नहीं (जैसे ऊपर के वाक्य (ख) में है) बल्कि पद हैं (जैसे वाक्य (क) में है।) **एक वाक्य में शब्द जिस रूप में आते हैं, वे पद कहलाते हैं।** इस तरह पद रूप विज्ञान और वाक्य विज्ञान का सेतु है।

वाक्य
↑
उपवाक्य | वाक्य विज्ञान
↑
पदबंध
[मेरे लड़के ने]
[मेरा, लड़का, ने] | रूप विज्ञान
शब्द
↑
रूप

वाक्य विज्ञान का सबसे छोटा खंड पदबंध कहलाता है, क्योंकि यह पदों से निर्मित होता है। इस कारण हम वाक्य में आने वाले पदों की वाक्य संरचना के संदर्भ में विशेषताएँ बताने वाले कार्य को पद परिचय कहते हैं।

पद परिचय : ऊपर के वाक्य (क) का पद परिचय इस तरह किया जा सकता है :

उस - निर्देशवाचक सर्वनाम 'वह' का तिर्यक रूप, संज्ञा, पदबंध में संज्ञा का विशेषणवत् प्रयोग, एकवचन

लड़के - आकरांत, पुल्लिंग एकवचन संज्ञा शब्द का विकारी रूप, कर्ता या कर्म पदबंध में आ सकता है।

ने - कर्ता पदबंध सूचित करने वाला परसर्ग।

कुत्तों - आकारांत, पुल्लिंग, बहुवचन संज्ञा का विकारी रूप। संज्ञा पदबंध का शीर्ष है।

को - परसर्ग, कर्म पदबंध का द्योतक

मारा - इस वाक्य में कर्म+को के कारण अविकारी, सामान्य भूतकाल, पूर्ण पक्ष।

इस तरह पद परिचय वाक्य में पदों के विविध प्रकार्यों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिससे हम वाक्य में उनका स्थान और प्रकार्य समझ सकें। इस तरह पद की संकल्पना रूप विज्ञान और वाक्य विज्ञान का सेतु है।

9.8 सारांश

इस इकाई में हमने तीन महत्वपूर्ण संकल्पनाओं की चर्चा की। रूप भाषा का सबसे छोटा खंड है। अगर रूप स्वतंत्र है तो वे मूल शब्द कहलाएँगे जैसे पेड़, बच्चा, घोड़ा आदि। अगर रूप बद्ध हो तो वह उपसर्ग या प्रत्यय कहलाएगा और मूल शब्द के साथ मिलकर विस्तृत शब्दों का निर्माण करेगा। जैसे उपसर्ग से 'सम्मान्य' शब्द बनता है और प्रत्यय से 'एकता' शब्द बनता है।

शब्द निर्माण की प्रक्रिया के आधार पर शब्द के कई प्रकार हैं। स्वतंत्र रूप मूल शब्द ही हैं, व्याकरणिक संबंध प्रकट करने वाले प्रत्ययों से हम रूप साधित (inflected) शब्दों का निर्माण करते हैं। रूप साधित शब्द वास्तव में पदबंध की रचना में काम आते हैं और वाक्य के समन्वित अर्थ की सृष्टि करते हैं। शब्द साधक या व्युत्पादक प्रत्यय अर्थ की दृष्टि से भिन्न शब्दों की रचना करते हैं।

शब्द निर्माण की दो और प्रक्रियाएँ भी हैं। संयुक्त शब्द भिन्न रूपों ओर मूल शब्दों से 'काम करना' आदि क्रियाओं का निर्माण करते हैं : पुनरुक्त रूपों से चमचमाना, डगमगाना आदि शब्दों की रचना करते हैं जिसमें प्रत्यय लगाकर हम 'चमचमाहट' आदि संज्ञाओं का भी शब्द साधन करते हैं। समस्त शब्द दो स्वतंत्र शब्दों के योग से बनते हैं। व्युत्पन्न शब्दों का प्रयोग अनिवार्य पदबंधों की रचना के लिए या अतिरिक्त पदबंध के रूप में होता है। पद वास्तव में वाक्य में शब्द के प्रयोग का दूसरा नाम है। विभिन्न प्रकार से निर्मित शब्दों का जब हम वाक्य में प्रयोग करते हैं तो उनमें उनके स्थान के आधार पर कर्ता, कर्म आदि पदबंधों में उनके प्रकार्य के आधार पर विविध प्रकार के व्याकरणिक संबंध स्पष्ट होते हैं जो वाक्य के समग्र अर्थों को समझने में हमारी सहायता करते हैं।

9.9 अभ्यास प्रश्न

1. **निबंधात्मक**
   (1) रूपिम की संकल्पना स्पष्ट कीजिए और शब्द निर्माण में इसका प्रकार्य समझाइए।
   (2) शब्द वर्ग से क्या तात्पर्य है। आप हिंदी में कितने शब्द वर्ग स्थापित कर सकते हैं?

2. **टिप्पणी लिखिए**
   (1) रूप और शब्द का संबंध
   (2) रूप साधक और शब्द साधक प्रत्ययों में अंतर
   (3) विलोम शब्द के प्रकार

(4) विकारी और अविकारी शब्द
(5) रूप के प्रकार
(6) रूपिम की संकल्पना

3. **वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

अभ्यास-1

सही शब्द चुनकर वाक्य पूरे कीजिए।

(i) वाक्य में व्यवहृत स्वतंत्र सार्थक इकाई को .... कहते हैं। (शब्द/पद)

(ii) 'कर' से 'क्रिया' की रचना .... प्रत्यय से हुई है। (शब्दसाधक/रूपसाधक)

(iii) तत्पुरुष समाज .... रचना है। (अंतःकेंद्रित/बहिःकेंद्रित)

(iv) भाषा की सबसे छोटी, सार्थक इकाई को .... कहते हैं। (शब्द/रूप)

(v) सत्, सन्, सद् एक ही .... के सदस्य हैं। (रूपिम/प्रत्यय)

अभ्यास-2

(i) चाय-वाद को हम पुनरुक्त शब्द कहते हैं। (सही/गलत)

(ii) 'राजद्रोह' में दो मुक्त रूप एक साथ आये हैं। (सही/गलत)

(iii) रूपसाधक प्रत्ययों से व्याकरणिक विशेषताएँ प्रकट होती हैं। (सही/गलत)

(iv) संज्ञा, विशेषण आदि को प्रकार्यात्मक शब्द कहते हैं। (सही/गलत)

(v) स्वतंत्र रूप को शब्द भी कह सकते हैं। (सही/गलत)

उत्तर

अभ्यास-1

(i) पद
(ii) रूपसाधक
(iii) बहिःकेंद्रित
(iv) रूप
(v) रूपिम

अभ्यास-2

(i) गलत
(ii) सही
(iii) सही
(iv) गलत
(v) सही

इकाई 10 वाक्य संरचना-I

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 वाक्य विज्ञान
10.3 वाक्य का स्वरूप
 10.3.1 अर्थपरक इकाई के रूप में
 10.3.2 संरचनापरक इकाई के अंत में
 10.3.3 व्याकरणिक इकाई के रूप में
 10.3.4 मनोवैज्ञानिक इकाई के रूप में
 10.3.5 संदर्भपरक इकाई के रूप में
10.4 वाक्य की संरचना
 10.4.1 भाषा संरचना में वाक्य
 10.4.2 वाक्य संरचना के स्तर : उपवाक्य, पदबंध
10.5 वाक्यात्मक युक्तियाँ
 10.5.1 पदक्रम (शब्दक्रम)
 10.5.2 कारक संबंध
 10.5.3 अन्विति
 10.5.4 अर्थ संगति
 10.5.5 अध्याहार/अल्पांग वाक्य
10.6 सारांश
10.9 अभ्यास प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- वाक्य विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र को समझ सकेंगे,
- वाक्य का स्वरूप समझ सकेंगे,
- संरचना, अर्थ तथा संदर्भ की दृष्टि से वाक्य के स्वरूप के विभिन्न आयामों को समझ सकेंगे,
- भाषा संरचना में वाक्य के स्थान और महत्व को समझ सकेंगे,
- वाक्य के विभिन्न घटकों के बीच संरचनाक्रम को समझ सकेंगे,
- वाक्य की विभिन्न व्याकरणिक युक्तियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे,
- वाक्य में पदक्रम के महत्व को समझ सकेंगे,
- वाक्य में कारक संबंधों को समझ सकेंगे,
- वाक्य में अन्विति की व्यवस्था का महत्व समझ सकेंगे,
- वाक्य में अर्थसंगति या योग्यता का महत्व समझ सकेंगे, और
- वाक्य में अध्याहार युक्ति या अल्पांग वाक्यों की रचना समझ सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप शब्द की रचना प्रक्रिया के बारे में पढ़ चुके हैं। इस इकाई में आप वाक्य की रचना प्रक्रिया और उसके नियमों के बारे में पढ़ेंगे।

वाक्य रचना के नियमों का अध्ययन वाक्य विज्ञान कहलाता है। इस इकाई में हम वाक्यविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र का परिचय देंगे। हम देखेंगे कि अर्थ, संरचना, मनोविज्ञान, व्याकरण, सामाजिक संदर्भ आदि की दृष्टियों से विद्वानों ने वाक्य के स्वरूप की व्याख्या की है। हम भाषा संरचना में वाक्य की स्थिति स्पष्ट करते हुए इसके दो प्रमुख घटक **उपवाक्य** और **पदबंध** की भी चर्चा करेंगे।

हम इस इकाई में आपको उन वाक्यात्मक युक्तियों का भी परिचय देंगे जिनसे संगत वाक्यों की रचना संभव होती है, जैसे पदक्रम, कारक संबंध, अन्विति, अर्थसंगति और अध्याहार (अल्पांग वाक्य)।

10.2 वाक्य विज्ञान

पिछली इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि **रूपविज्ञान** शब्द या रूप की संरचना का अध्ययन करना है। उसी प्रकार **वाक्यविज्ञान** वाक्य की संरचना का अध्ययन करता है। **वाक्यविज्ञान भाषा की उस प्रक्रिया और नियम व्यवस्था का अध्ययन करना है जिनसे शब्द एक दूसरे के योग से वाक्य की रचना करते हैं।** इसे हम यों भी कह सकते हैं कि वाक्य संरचना के विभिन्न घटकों के बीच परस्पर संबंधों का अध्ययन **वाक्यविज्ञान** है।

जिस प्रकार विभिन्न ध्वनियों के योग से शब्द की रचना होती है उसी तरह विभिन्न शब्दों (या पदबंधों) के योग से **वाक्य** की रचना होती है। वाक्यविज्ञान जहाँ एक ओर इन शब्दों से मिलकर बननेवाली रचना (वाक्य) का अध्ययन करता है वहीं दूसरा ओर यह वाक्य के अंतर्गत दो या अधिक उपवाक्यों के परस्पर संबंधों का भी अध्ययन करता है। उपवाक्यों के स्तर पर **सरल**, **संयुक्त** और **मिश्र** तीन प्रकार के वाक्य माने जाते हैं। अतः एकाधिक उपवाक्यों से बनने वाले वाक्यों की संरचना के नियमों का अध्ययन भी वाक्यविज्ञान का विषय है।

वाक्यविज्ञान उन विभिन्न व्याकरणिक युक्तियों का भी अध्ययन करता है जिनके प्रयोग से व्याकरणसम्मत तथा संगत वाक्यों का निर्माण संभव होता है। इस प्रकार की कुछ प्रमुख वाक्यात्मक युक्तियाँ हैं : पदक्रम, कारक संबंध, अन्विति, अर्थसंगति तथा अध्याहार।

वाक्यविज्ञान के अंतर्गत वाक्यात्मक संबंधों का अध्ययन दो स्तरों पर होता है : वाक्य विन्यासात्मक (रेखीय) संबंध और रूपावली संबंध। **वाक्य विन्यासात्मक** (या रेखीय) संबंध से तात्पर्य है वाक्य के विभिन्न घटकों के बीच मौजूद क्रमिक व्याकरणिक संबंध (जैसे, कर्ता, कर्म, पूरक, क्रियाविशेषण तथा क्रिया आदि)। इस अध्ययन के फलस्वरूप हम किसी भाषा विशेष के **मूलवाक्य-साँचों** या वाक्य-कोटियों की संख्या और स्वरूप का निधार्रण करने में समर्थ होते हैं। द्रष्टव्य है कि वाक्य-साँचों से ही भाषा के समस्त वाक्य प्रजनित (व्युत्पन्न) होते हैं। इन्हीं को सरल शब्दों में हम वाक्य का रूपांतरण या विस्तार भी कहते हैं। वाक्यविज्ञान उन नियमों और युक्तियों का भी अध्ययन करता है जिनसे मूल वाक्य-साँचों का विस्तार अथवा रूपांतरण भाषा के अनेक प्रकार के वाक्यों में संभव होता है।

रूपावली संबंध (paradigmatic relation) से तात्पर्य है वाक्य के किसी घटक विशेष (शब्द, पदबंध) का अपने ही वर्ग के अन्य शब्दों से जुड़ा होना। वाक्य में किसी एक घटक के प्रयोग-स्थान पर हम अन्य समानधर्मा शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं। उदाहरण के लिए "रमेश घर जा रहा है" वाक्य में रमेश के प्रयोग-स्थान पर हम 'लड़का', 'वह' 'मेरा बड़ा भाई' आदि शब्द या पदबंध इस्तेमाल कर सकते हैं। इसी प्रकार 'घर' के स्थान पर हम 'बाज़ार', 'अस्पताल', 'सीता के यहाँ' आदि शब्द या पदबंध इस्तेमाल कर सकते हैं। एक ही वर्ग के एकाधिक शब्दों/पदबंधों के बीच का यह संबंध **रूपावली संबंध** कहलाता है। यह संबंध रेखीय

या क्रमिक नहीं होता बल्कि ऊपर से नीचे की ओर होता है। द्रष्टव्य है कि इसी ऊर्ध्वाधर संबंध से **पदबंध** की संकल्पना विकसित होती है।

हिंदी वाक्य-संरचना के संदर्भ में उक्त आयामों में से कुछ की चर्चा हम इस इकाई में करेंगे और शेष की अगली इकाई-11 में।

10.3 वाक्य का स्वरूप

वाक्य क्या है? इसका उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि हम वाक्य को अर्थ की एक इकाई के रूप में देख रहे हैं या संरचना की एक इकाई के रूप में, किसी मानसिक इकाई के रूप में देख रहे हैं या सामाजिक संदर्भ की एक इकाई के रूप में, आदि। स्पष्ट है कि वाक्य के संबंध में जितने मत हैं, उतनी ही तरह की इसकी परिभाषाएँ हैं। नीचे हम वाक्य के संबंध में पाँच दृष्टिकोण प्रस्तुत कर रहे हैं जिनसे यह भी स्पष्ट हो जाएगा कि भाषाविज्ञान की बदलती मान्यताओं के साथ-साथ किस प्रकार समय-समय पर वाक्य के प्रति भी विद्वानों के दृष्टिकोणों में परिवर्तन आया है।

10.3.1 अर्थपरक इकाई के रूप में

पारंपरिक रूप से अधिकांश विद्वानों ने वाक्य को अर्थ की एक इकाई के रूप में ही परिभाषित किया है। इस मत के अनुसार वाक्य एक अपेक्षाकृत पूर्ण और स्वतंत्र मानव उक्ति है जिसकी पूर्णता और स्वतंत्रता इस बात में है कि यह अकेले प्रयुक्त होता है या हो सकता है। इस दृष्टि से वाक्य **'एक स्वतंत्र अर्थपूर्ण उक्ति'** है। कामताप्रसाद गुरू (1920) ने भी वाक्य को **एक पूर्ण विचार व्यक्त करने वाला शब्द समूह'** कहा है। उदाहरण के लिए नीचे दिया पहला शब्द-समूह वाक्य है जबकि दूसरा शब्द-समूह वाक्य नहीं है, क्योंकि यह पूर्ण विचार व्यक्त नहीं करता :

(1) मेरा मित्र परीक्षा देने जा रहा है। (वाक्य)

(2) मेरा मित्र परीक्षा देने। (वाक्य नहीं)

10.3.2 संरचनापरक इकाई के रूप में

कुछ विद्वानों का मानना है कि अर्थ या विचार की पूर्णता सापेक्षिक होती है। एक विचार को हम दो या अधिक वाक्यों में भी कह सकते हैं और एक में भी। अतः संरचनावादी भाषावैज्ञानिकों ने वाक्य को एक मूर्त रचना के रूप में स्वीकार किया, अमूर्त अर्थ के रूप में नहीं। उनके अनुसार वाक्य एक रचना है जो कुछ घटकों (शब्दों, पदबंधों) से मिलकर बना है, उसी प्रकार जिस प्रकार शब्द एक रचना है जो कुछ ध्वनियों से मिलकर बना है। अतः ब्लूमफील्ड के अनुसार 'वाक्य एक ऐसी रचना है जो किसी उक्ति विशेष में अपने से बड़ी किसी रचना का अंग नहीं बन सकती।' इस दृष्टि से वाक्य भाषा की सबसे बड़ी इकाई है। उदाहरण के लिए, ध्वनि अपने से बड़ी रचना शब्द का अंग है, शब्द अपने से बड़ी रचना पदबंध का अंग है, पदबंध अपने से बड़ी रचना उपवाक्य का अंग है, लेकिन वाक्य अपने से बड़ी किसी रचना का अंग नहीं हो सकता। देखिए :

ध्वनियाँ	: ल/ड़/क/आ	शब्द	: लड़का
शब्द	: मेरा/बड़ा/लड़का	पदबंध	: मेरा बड़ा लड़का
पदबंध	: मेरा बड़ा लड़का/कल/आ रहा है	उपवाक्य	: मेरा बड़ा लड़का कल आ रहा है।
उपवाक्य	: मैंने उन्हें बताया/कि मेरा लड़का कल आ रहा है	वाक्य	: मैंने उन्हें बताया कि मेरा बड़ा लड़का कल आ रहा है।

10.3.3 व्याकरणिक इकाई के रूप में

वाक्य को हम एक व्याकरणिक इकाई के रूप में भी देख सकते हैं। वाक्य के विभिन्न घटक वाक्य में कोई न कोई व्याकरणिक भूमिका निभाते हैं, अर्थात् कोई न कोई व्याकरणिक प्रकार्य पूरा करते हैं। इस दृष्टि से वाक्य एक ऐसी व्याकरणिक रचना है जिसमें कम से कम दो अवयवों का होना ज़रूरी है - उद्देश्य और विधेय। उद्देश्य वाक्य का वह अंश है जिसके बारे में कुछ कहा जाए। उद्देश्य के बारे में जो कुछ कहा जाए वह विधेय है। देखिए :

उद्देश्य	विधेय
मेरा बड़ा लड़का	कल आ रहा है।
सतीश	बीमार है।
बच्चे को	गर्मी लग रही है।

वाक्य में उद्देश्य और विधेय का विस्तार संभव है। यह विस्तार या तो विशेषणों के प्रयोग से संभव होता है (देखिए (क)) या फिर अन्य घटकों के आगम से (देखिए (ख)), जैसे :

(क) लड़का → मेरा बड़ा लड़का
बीमारा → बहुत बीमार

(ख) मेरा लड़का/कल शाम की गाड़ी से/दिल्ली/जा रहा है।

10.3.4 मनोवैज्ञानिक इकाई के रूप में

संरचनावादी भाषावैज्ञानिकों ने वाक्य को एक मूर्त तथा विश्लेष्य रचना के रूप में देखा था, लेकिन रूपांतरण निष्पादक व्याकरण के जनक चॉम्स्की ने वाक्य को मानव मस्तिष्क में स्थित एक अमूर्त संकल्पना के रूप में स्वीकार किया। उनके अनुसार इस अमूर्त संकल्पना का व्यक्त या व्यावहारिक रूप **उक्ति** है। अपने अमूर्त मानसिक रूप में वाक्य एक **आदर्श वाक्य** होता है जो हर दृष्टि से पूर्ण और सही होता है। उसका जो रूप बाह्य संरचना से व्यक्त होता है वह उससे भिन्न हो सकता है। अतः वाक्य की दो प्रकार की संरचनाओं की कल्पना की गई : आंतरिक तथा बाह्य/ ऊपर से एक दिखाई देने वाले वाक्य में एक या अधिक आंतरिक वाक्य अंतर्निहित हो सकते हैं। इन आंतरिक वाक्यों को आधायित (embeded) वाक्य कहा जाता है। जिस वाक्य में आधायित वाक्य निहित होता है उसे **आधात्री वाक्य** कहते हैं। देखिए :

बाह्य संरचना	: मैंने लोगों को कमरे से बाहर भागते देखा।	
आंतरिक संरचना	: क. मैंने लोगों को देखा।	(आधात्री वाक्य)
	ख. लोग कमरे से बाहर भाग रहे थे	(आधायित वाक्य)

यही कारण है कि मनोवादी भाषावैज्ञानिक वाक्य को एक संरचित माला या लड़ी (स्ट्रक्चर्ड स्ट्रिंग) मानते हैं। उनके अनुसार वाक्य रेखीय क्रम में बुनी गई लड़ी या माला नहीं है। इसकी बुनावट में उच्चाधिक्रम (hierarchy) है और एक से अधिक स्तर हैं।

संरचनावादी भाषावैज्ञानिक अर्थ को अविश्लेष्य मानते हुए इसे अपने विश्लेषण में शामिल नहीं करते थे। रूपांतरण निष्पादक व्याकरण ने अर्थबोध को अपने विश्लेषण में एक घटक के रूप में स्वीकार किया क्योंकि इसी घटक से बाह्य स्तर पर समान लेकिन आंतरिक स्तर पर भिन्न से वाक्यों में भेद स्पष्ट करना संभव होता है। देखिए :

राधा ने लड़कों को मुस्कराते हुए देखा।
क. राधा मुस्करा रही थी। (वाक्य 1),
ख. लड़के मुस्करा रहे थे। (वाक्य 2)

10.3.5 संदर्भपरक इकाई के रूप में

समाज भाषाविज्ञान और बाद में संकेत प्रयोग विज्ञान (प्रैग्मेटिक्स) के विकास के बाद वाक्य की संकल्पना में बहुत बड़ा परिवर्तन आया। अब वाक्य को संरचना के रूप में नहीं बल्कि एक सामाजिक 'घटना' या कार्यव्यापार के एक घटक के रूप में देखा जाने लगा जिसका संबंध संवाद के पूर्ण परिवेश से होता है। इस दृष्टि से वाक्य संदेश-संप्रेषण की एक इकाई है, लेकिन मूल इकाई नहीं। संदेश-संप्रेषण की दृष्टि से अब भाषा की मूल इकाई प्रोक्ति (डिस्कोर्स) माना जाने लगा, वाक्य नहीं। जो वाक्य या वाक्य समूह वक्ता के पूर्ण मंतव्य, विचार-बिंदु या संदेश को व्यक्त करे, वह प्रोक्ति है।

प्रसंग के अनुसार प्रोक्ति केवल एक शब्द की भी हो सकती है (बैठिए, आओ), एक वाक्य की भी (एक गिलास पानी लाओ), एक से अधिक वाक्यों की भी (कमरे में जाओ। वहाँ पानी का एक गिलास रखा है। उसे ले आओ), एक पैराग्राफ की भी और एक पूर्ण अध्याय या पुस्तक की भी। आप प्रोक्ति के बारे में विस्तार से इकाई 13 में पढ़ेंगे।

ऊपर के विवेचन से आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि प्रारंभ से लेकर अब तक वाक्य की संकल्पना में कितने मोड़ आए और किस प्रकार भाषावैज्ञानिक विचारधाराओं के उतार-चढ़ाव के साथ इसकी परिभाषा बदलती रही।

10.4 वाक्य की संरचना

10.4.1 भाषा संरचना में वाक्य

भाषा की संरचना के तीन प्रमुख अंग माने जाते हैं - ध्वनि, व्याकरण और अर्थ। इनमें से व्याकरण के दो प्रमुख अवयवों में एक है वाक्य और दूसरा शब्द। सुविधा के लिए भाषा-संरचना का वर्गीकरण इस प्रकार दर्शाया जा सकता है :

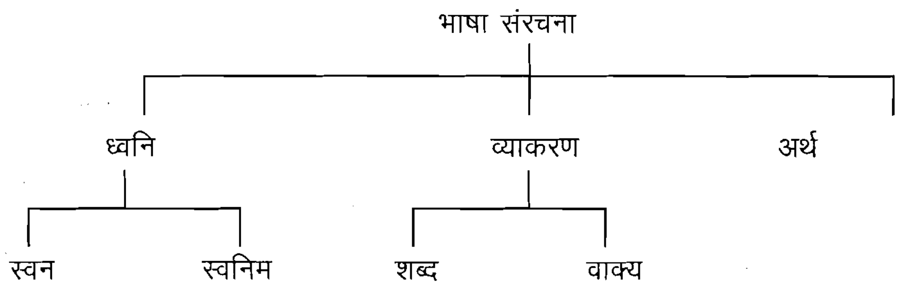

इससे पहले अनुच्छेद 10.3 में आपने देखा कि व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से वाक्य भाषा की सबसे बड़ी इकाई है, लेकिन संदेश-संप्रेषण की दृष्टि से वाक्य से भी बड़ी एक इकाई है प्रोक्ति, जो वक्ता के पूर्ण मंतव्य का प्रतिनिधित्व करती है। प्रोक्ति भाषा की वह इकाई है जो वक्ता के अभीष्ट मंतव्य या संदेश को अपनी पूर्णता में श्रोता तक पहुँचाती है।

10.4.2 वाक्य संरचना के स्तर : उपवाक्य, पदबंध

(क) **उपवाक्य :** वाक्य से छोटा घटक उपवाक्य है। वाक्य एक उपवाक्य का भी हो सकता है और एक से अधिक उपवाक्यों का भी। जहाँ वाक्य में केवल एक उपवाक्य होता है वहाँ वह स्वतंत्र उपवाक्य होता है और सरल वाक्य कहलाता है। इस स्थिति में वाक्य और उपवाक्य में अभेद होता है। उदाहरण के लिए नीचे दिया वाक्य (1) एक स्वतंत्र उपवाक्य है और इसलिए सरल वाक्य भी है। इसमें केवल एक ही उपवाक्य की सत्ता है। इससे भिन्न वाक्य (2) में दो उपवाक्य हैं लेकिन यह भी वाक्य है। देखिए:

(1) मैंने एक मकान खरीदा। (एक स्वतंत्र उपवाक्य=वाक्य)

(2) मैंने एक मकान खरीदा जिसमें चार कमरे हैं।
(स्वतंत्र उपवाक्य+अस्वतंत्र उपवाक्य = वाक्य)

वाक्य में उपवाक्यों की संख्या एक या एक से अधिक कितनी भी हो सकती है। जिन वाक्यों में दो या अधिक उपवाक्य होते हैं उनमें उपवाक्यों के बीच दो प्रकार के संबंध संभव हैं : अस्वतंत्र (आश्रित) और स्वतंत्र (अनाश्रित)। जो उपवाक्य दूसरे उपवाक्यों पर आश्रित होते हैं उन्हें आश्रित उपवाक्य कहते हैं। जो उपवाक्य दूसरे उपवाक्यों पर आश्रित नहीं होते वे स्वतंत्र (या मुख्य) उपवाक्य होते हैं। देखिए :

(1) सेठजी ने जेब से पैसे निकाले और लड़के को दे दिए।
(दोनों स्वतंत्र उपवाक्य)

(2) जेनी ने वे कपड़े पहने जो मैंने उसे दिए थे।
(पहला उपवाक्य स्वतंत्र/मुख्य, दूसरा आश्रित)

जिन उपवाक्यों में दोनों उपवाक्य स्वतंत्र होते हैं उन्हें संयुक्त वाक्य कहते हैं, जैसे उपर्युक्त वाक्य (1)। जिन वाक्यों में एक उपवाक्य स्वतंत्र/मुख्य और दूसरा आश्रित रहता है, उन्हें मिश्र वाक्य कहते हैं। इस दृष्टि से उपवाक्यों के संदर्भ में वाक्य की तीन कोटियाँ संभव हैं :

1. सरल वाक्य [जिसमें केवल एक उपवाक्य होता है जो अनिवार्यतः स्वतंत्र होता है।]
2. संयुक्त वाक्य [जिसमें दो या अधिका स्वतंत्र/मुख्य उपवाक्य होते हैं]
3. मिश्र वाक्य [जिसमें एक स्वतंत्र/मुख्य उपवाक्य होता है और शेष आश्रित उपवाक्य]

इन पर विस्तृत चर्चा इकाई-11 में की जाएगी।

(ख) पदबंध : उपवाक्य से छोटा घटक पदबंध है। उपवाक्य पदबंधों से मिलकर बनता है। पदबंध वाक्य में निर्धारित व्याकरणिक प्रकार्यों को पूरी करने वाली इकाइयाँ हैं, जिनका अस्तित्व केवल वाक्य के अंतर्गत ही संभव है, वाक्य के बाहर नहीं।

पदबंध की संकल्पना को आप इस प्रकार भी समझ सकते हैं। प्रत्येक वाक्य में कर्ता, कर्म, पूरक क्रियाविशेषण तथा क्रिया आदि का एक निर्धारित प्रयोग-स्थान होता है। इन स्थानों पर प्रयुक्त होकर संज्ञा, विशेषण क्रियाविशेषण, क्रिया आदि शब्द वाक्य में कुछ निश्चित भूमिकाएँ निभाते हैं और वाक्य में निर्धारित प्रकार्य संपन्न करते हैं। इन स्थानों को प्रकार्य स्थान कहते हैं और इन स्थानों पर जो शब्द या शब्द समूह प्रयुक्त होते हैं या होने की क्षमता रखते हैं उन्हें पदबंध कहते हैं। इस दृष्टि से पदबंध एक शब्द का भी हो सकता है और एक से अधिक शब्दों का भी। देखिए :

कर्ता पदबंध	**कर्म पदबंध**	**क्रिया पदबंध**
(1) ड्राइवर	गाड़ी	धो रहा है।
(2) मेरा ड्राइवर	दोनों गाड़ियाँ	धो रहा है।
(3) हमारा पुराना ड्राइवर	बाहर रखी सभी गाड़ियाँ	धो रहा है।

वाक्य (1) में तीन पदबंध हैं : 'ड्राइवर', 'गाड़ी' और 'धो रहा है'। ये तीनों घटक यहाँ क्रमशः कर्ता, कर्म और क्रिया के प्रकार्य स्थान पर प्रयुक्त हैं। वाक्य (2) और (3) में इन पदबंधों का कुछ विस्तार हुआ है, लेकिन उनके प्रकार्य वे ही हैं। समान प्रकार्य-स्थानों पर प्रयुक्त होने के कारण वे भी पदबंध हैं, अर्थात् प्रकार्य की दृष्टि से

'ड्राइवर', 'मेरा ड्राइवर' और 'हमारा पुराना ड्राइवर' में कोई अंतर नहीं है, क्योंकि तीनों कर्ता स्थान पर प्रयुक्त हैं। यहाँ तीनों पदबंधों में शीर्ष एक ही है - 'ड्राइवर'। यही स्थिति अन्य दो पदबंधों के साथ भी है। तात्पर्य यह कि पदबंध के विस्तार के लिए शीर्ष के साथ जितने भी विशेषक (विशेषण आदि) प्रयुक्त होंगे, वे सभी उसके अंग होते चले जाएँगे।

पदबंधों का विस्तार मुख्यतः चार प्रकार से संभव होता है :

1. शीर्ष (संज्ञा आदि) में विशेषण जोड़कर, जैसे :
   (मीठा) फल, (बच्चों के) कपड़े,
   (ऊपर के मकान में रहने वाला) व्यक्ति
2. दो या अधिक शीर्षों का प्रयोग कर, जैसे :
   राम और सीता, बच्चे, बूढ़े और ज़वान,
   आम, संतरे, अनार और केले
3. दो या अधिक शीर्षों को समानाधिकरण संबंधों में जोड़कर। ऐसे दृष्टांतों में दो या अधिक शीर्ष एक ही व्यक्ति या पदार्थ का बोध कराते हैं और एक प्रकार का विशेषण का-सा कार्य करते हैं लेकिन दोनों संज्ञाएं शीर्ष होती हैं, जैसे :
   हमारे निदेशक श्री राम लाल गुप्ता
   मेरा लड़का सतीश
4. परसर्गों आदि के प्रयोग से, जिससे सामान्यतः क्रियाविशेषण पदबंध प्राप्त किए जा सकते हैं, जैसे :
   सड़क में, उन विद्यार्थियों **के लिए**, छोटी बस से।

पदबंध से छोटी इकाई शब्द है। शब्दों के योग से ही पदबंध की रचना होती है, जैसे:
हमारा + पुराना + ड्राइवर = हमारा पुराना ड्राइवर

जिस पदबंध में केवल एक ही शब्द होता है उसमें शब्द और पदबंध में अभेद होता है जैसे 'ड्राइवर गाड़ी धो रहा है' में 'ड्राइवर' और 'गाड़ी' पदबंध भी हैं और शब्द भी। वाक्य में आने वाले शब्दों को हम पद कहते हैं। इसके बारे में आप इकाई 9 में पढ़ चुके हैं। शब्द से छोटा घटक रूपिम है और रूपिम से छोटा घटक स्वनिम है। इन दोनों के बारे में आप इससे पहले की इकाइयों में विस्तार से पढ़ चुके हैं।

उक्त विश्लेषण में भाषा संरचना में वाक्य तथा अन्य घटकों के बारे में हमने जो कुछ चर्चा की उसके आधार पर हम भाषा के विभिन्न घटकों को अधिक्रम (हाइरार्की) इस प्रकार दर्शा सकते हैं :

प्रोक्ति
वाक्य
उपवाक्य
पदबंध
शब्द
रूपिम
स्वनिम

10.5 वाक्यात्मक युक्तियाँ

ऊपर हमने वाक्य को शब्दों अथवा पदबंधों से बनी एक रचना कहा है। इससे यह नहीं समझना चाहिए वाक्य बिखरे हुए शब्दों का समूह मात्र है। आप किसी भी को गौर से देखें तो

आप पाएँगे कि वाक्य के विभिन्न घटकों के बीच एक प्रकार की क्रमबद्धता होती है। इसे हम **पदक्रम** (या शब्दक्रम) कहते हैं। आप यह भी पाएँगे कि इन घटकों के बीच एक प्रकार का व्याकरणिक संबंध भी है जो शब्दों (घटकों) के प्रयोग स्थान द्वारा या फिर विभक्तियों (ने, को, में, से आदि) द्वारा व्यक्त होता है। इसे हम **कारक** या **कारक संबंध** कहते हैं। आप यह भी पाएँगे कि वाक्य के कुछ घटक अन्य घटकों के रूपों को वचन, लिंग, पुरुष की दृष्टि से प्रभावित करते हैं। यह **अन्विति** कहलाता है। आप यह भी पाएँगे कि एक ही संरचनात्मक कोटि का शब्द होते हुए भी आप उसके स्थान पर दूसरा शब्द नहीं इस्तेमाल कर सकते। दूसरे शब्दों में, किसी भी संज्ञा आदि शब्द की जगह वाक्य में कोई भी दूसरा संज्ञा आदि शब्द आप नहीं रख सकते। शब्दों के अर्थ में एक प्रकार की संगति होती है तभी वे शब्द सही वाक्य का निर्माण करते हैं। वाक्य के इस लक्षण को हम **अर्थसंगति** (या योग्यता) कहते हैं।

आप अक्सर यह भी देखते हैं कि हम कभी-कभी पूरा वाक्य न बोलकर वाक्यों के कुछ अंशों को लुप्त कर देते हैं, लेकिन फिर भी श्रोता को अभीष्ट अर्थ का बोध हो जाता है। इसे हम अध्याहार कहते हैं और इस प्रकार के वाक्यों को प्रायः अल्पांग वाक्य कहते हैं। ये सभी वाक्य-रचना की कुछ व्याकरणिक युक्तियाँ या लक्षण हैं जिनकी संक्षिप्त चर्चा हम आगे करेंगे।

10.5.1 पदक्रम (शब्दक्रम)

शब्द से बड़ी किसी भी रचना में शब्दों का पूर्वापर क्रम शब्दक्रम कहलाता है। यह क्रम-विधान हर भाषा में अलग हो सकता है। उदाहरण के लिए हिंदी, अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में संज्ञा पदबंध का शब्दक्रम है : विशेषण + संज्ञा, जैसे बड़ा लड़का, सुंदर मकान। कुछ अन्य भाषाओं में (जैसे फ्रांसीसी, रोमानियन आदि) यह क्रम उलटा होता है अर्थात् संज्ञा + विशेषण। इसी प्रकार हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में क्रिया वाक्य के अंत में आती है जबकि अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में कर्ता के बाद, अर्थात् मध्य में।

यहाँ हमारी चर्चा का विषय वाक्य के घटकों के बीच शब्दक्रम व्यवस्था से है। वाक्य के संदर्भ में इसे पदक्रम कहना अधिक उचित है। वाक्य के स्तर पर पदक्रम की लगभग वही भूमिका होती है जो कारक विभक्ति की होती है। इसलिए कोई शब्द वाक्य में किस स्थान पर और किससे पहले या बाद में प्रयुक्त होता है यह कभी-कभी प्रकट करता है कि वह शब्द वाक्य में कर्ता है, कर्म है या कोई और व्याकरणिक प्रकार्य कर रहा है। इस दृष्टि से पदक्रम का वाक्य में वही महत्व है जो कारक का है। उदाहरण के लिए, इन दो वाक्यों में प्रथम स्थान में आने के कारण ही साँप और मेंढ़क कर्ता है।

साँप मेंढ़क खा रहा है (साँप : कर्ता)
मेंढ़क साँप खा रहा है (मेंढ़क : कर्ता)

यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि अगर संज्ञा के बाद कोई विभक्ति या परसर्ग (ने, को, से आदि) प्रयुक्त हो तो प्रायः वह विभक्ति ही कर्ता, कर्म आदि की सूचना देता है, पदक्रम नहीं। देखिए :

साँप मेंढ़क को खा रहा हे। (मेंढ़क : कर्म)
मेंढ़क को साँप खा रहा है। (मेंढ़क : कम)

हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में वाक्यों का पदक्रम है : कर्ता-कर्म-क्रिया जिसमें क्रिया का स्थान वाक्य के सबसे अंत में है। अंग्रेजी में इसे SOV रचना कहते हैं, अर्थत् subject - objcet-verb। अंग्रेजी इसके विपरीत SVO पदक्रम वाली भाषा है, अर्थात् जिसमें क्रिया का स्थान कर्ता के बाद होता है और कर्म का उसके बाद।

हिंदी के वाक्यों की सहज पदक्रम व्यवस्था इस प्रकार है : हिंदी वाक्य = (+कर्ता ± कर्म ± पूरक ± क्रिया विशेषण + क्रिया)

इसमें कर्ता तथा क्रिया अनिवार्य घटक (+) हैं, कर्म और पूरक ऐच्छिक घटक (±) हैं और क्रिया विशेषण ऐसा ऐच्छिक घटक है, जो अपने स्थान से पूर्व किसी भी स्थान पर आ सकता है, अर्थात् कर्ता से पहले या बाद में, कर्म से पहले या बाद में और क्रिया से पहले, लेकिन बाद में नहीं। देखिए :

परसों मैं चिट्ठी लिखूँगा।
मैं परसों चिट्ठी लिखूँगा।
मैं चिट्ठी परसों लिखूँगा।

कुछ भाषाओं में पदक्रम व्यवस्था अधिक स्थिर होती है और कुछ में अधिक लचीली। हिंदी वाक्यों में पदक्रम अधिक लचीला है। इसके विपरीत अंग्रेज़ी में पदक्रम काफी स्थिर है। उदाहरण के लिए नीचे दिए अंग्रेज़ी वाक्य में आप पदक्रम परिवर्तन नहीं कर सकते लेकिन हिंदी वाक्य में कर सकते हैं :

My brother has gone to the hopital
(*To the hopital my father has gone
*Has gone my father to the hopital)
मेरे पिताजी अस्पताल गए हैं।
गए हैं मेरे पिताजी अस्पताल।
अस्पताल गए हैं मेरे पिताजी।

10.5.2 कारक संबंध

वाक्य के विभिन्न पदबंध परस्पर कुछ वैयाकरणिक संबंधों से जुड़े होते हैं, तभी उनसे वांछित अर्थ बोध हो पाता है। यह व्याकरणिक संबंध कारक संबंध कहलाता है। इसी के फलस्वरूप वाक्य का कोई पदबंध कर्ता की भूमिका में होता है, कोई कर्म की, कोई पूरक, कोई क्रिया विशेषण की और कोई क्रिया की। वास्तव में इन्हीं की मदद से हमें किसी भी वाक्य का तर्कसम्मत अर्थबोध होता है।

आप पहले पढ़ चुके हैं कि वाक्य में कारक संबंधों की सूचना हमें, दो प्रकार से मिलती है कारक विभक्तियों से, (जैसे ने, को, में, से, के लिए आदि) और पद के प्रयोग स्थान से (जैसे प्रथमा, द्वितीया, आदि)। संस्कृत तथा परंपरागत हिंदी व्याकरण में वाक्य स्तर पर 6 प्रकार के कारक गिनाए गए हैं (इनकी प्रमुख संभावित विभक्तियाँ कोष्ठक में दी गई हैं) :

1. कर्ता (क्रिया का करने वाला) : ∅ ने (से, को)
2. कर्म (जिस पर क्रिया का प्रभाव या फल पड़े) : (∅, को)
3. करण (जिस साधन से क्रिया हो) : से, के द्वारा
4. संप्रदान (जिसकी हितपूर्ति क्रिया से हो) : को, के लिए
5. अपादान (जिससे अलगाव हो) : से
6. अधिकरण (क्रिया संचालन का आधार) : में, पर

वाक्य विश्लेषण में कारक संबंध अत्यंत महत्वपूर्ण और जटिल माना जाता है। भाषावैज्ञानिकों ने इस पर काफी कार्य किया है। प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक फ़िल्मोर (1968) ने 'कारक व्याकरण' नामक ग्रंथ की रचना की। उनके अनुसार "वाक्य एक क्रिया तथा एक से अधिक संज्ञा पदबंधों की ऐसी रचना है जिसमें प्रत्येक संज्ञा क्रिया के साथ एक विशेष कारक संबंध के अंतर्गत जुड़ी रहती है।" इस विश्लेषण में क्रिया वाक्य के केंद्र में है और क्रिया ही यह निश्चित करती है कि उसे वाक्य में कितने और किन-किन कारकों की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, आना, बुलाना, बुलवाना क्रियाओं की कारक संबंधी आकांक्षाएँ देखिए :

रमेश आया। (एक कारक)
निदेशक ने रमेश को बुलाया। (दो कारक)
निदेशक ने चपरासी से सचिव को बुलवाया (तीन कारक)

10.5.3 अन्विति

हर भाषा में संज्ञाओं की तीन प्रमुख व्याकरणिक कोटियाँ होती हैं - वक्ता, लिंग और पुरुष। इनकी एक विशेषता यह होती है कि ये प्रायः संज्ञा के माध्यम से वाक्य के कुछ घटकों (जैसे विशेषण और क्रिया) के रूपों को प्रभावित करती हैं। दूसरे शब्दों में, ये संज्ञाएँ उन्हें अपनी व्याकरणिक कोटि (लिंग-वचन-पुरुष) के अनुकूल रूप बदलने को बाध्य करती हैं। किसी घटक विशेष के प्रभाव में रूप बदलने की इस प्रक्रिया को अन्विति कहते हैं।

यद्यपि अन्विति की यह प्रक्रिया सभी भाषा में कमोबेश देखी जाती है, लेकिन हिंदी में यह प्रवृत्ति बहुत अधिक है। हिंदी में अन्विति दो स्तरों पर देखी जा सकती है - विशेषण और क्रिया।

1. विशेषण स्तर पर : छोटा लड़का, छोटे लड़के, छोटी लड़की
2. क्रिया स्तर पर : लड़का आ गया। सीता आ गई।
   मेहमान आ गए। महिलाएँ आ गईं।

वाक्य के संदर्भ में इनमें से संज्ञा-क्रिया की अन्विति अधिक महत्वपूर्ण है। संज्ञा-विशेषण की अन्विति मुख्यतः पदबंध स्तर तक सीमित रहती है।

10.5.4 अर्थ संगति

व्याकरणिक संरचना तथा अन्विति आदि की दृष्टि से सही होते हुए भी वाक्य अर्थ संगति की दृष्टि से दोषपूर्ण हो सकते हैं। देखिए :

1. * कल मैंने अपने विचारों को खाया।
2. * मेरी गाड़ी आज बहुत दुखी है।
3. * बच्चे बर्फ पढ़ रहे हैं।

ऊपर दिए तीन वाक्य क्यों असंगत हैं? शब्द जहाँ एक ओर व्याकरणिक रचना है, वहीं अर्थ के स्तर पर वह किसी वस्तु या व्यापार का प्रतीक भी है। जिस प्रकार वाक्य में व्याकरण की रचना संबंधी कुछ आकांक्षाएँ होती हैं उसी तरह वस्तु (अर्थ) की भी कार्य-व्यापारगत कुछ आकांक्षाएँ होती हैं। 'खाना' व्यापार का कर्म कोई खाद्य पदार्थ ही हो सकता है, 'विचार' नहीं। दुखी कोई प्राणी ही हो सकता है 'गाड़ी' नहीं। 'पढ़ना' व्यापार का कर्म कोई पठनीय वस्तु ही हो सवती है 'बर्फ़' नहीं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वाक्य के हर घटक को अर्थ की दृष्टि से भी अन्य संबद्ध घटकों के योग्य होना चाहिए। इसे अर्थसंगति कहा जाता है। इसीलिए परंपरागत व्याकरण में इसे योग्यता का गुण कहा जाता है।

10.5.5 अध्याहार/अल्पांग वाक्य

यदि अपने आस-पास वास्तव में प्रयुक्त वाक्यों को आप गौर से देखें तो आप पाएँगे कि हम अनेक बार वाक्य के कुछ अंशों का लोप कर देते हैं और कभी-कभी तो केवल एक-दो शब्दों का ही प्रयोग करते हैं और फिर भी अर्थबोध में कोई बाधा नहीं पहुँचती। भाषा का यह लक्षण **अध्याहार** कहलाता है और इस प्रकार के वाक्यों को हम **अल्पांग वाक्य** कहते हैं। पूर्णांग वाक्यों में वाक्य के सभी घटक मौजूद रहते हैं (राम घर जा रहा है)। अल्पांग वाक्यों में एक या अधिक घटकों का लोप होता है (आइए)।

अर्थबोध तथा रचना प्रक्रिया की दृष्टि से हम अल्पांग वाक्यों को चार प्रमुख वर्गों में रख सकते हैं :

1. **वृत्ति, मनोभाव, संबोधन**, अभिवादन सूचक अल्पांग वाक्य :

   हे भगवान!
   शुक्रिया।
   नमस्कार।
   शाबाश!

2. **संदर्भ आश्रित अल्पांग वाक्य :** इनमें लुप्त अंश का अर्थबोध संदर्भ की सहायता से होता है, जैसे :

   कौन? (प्रश्न)
   डाकिया। (उत्तर)
   (आप कहाँ जा रहे हैं?) बनारस।
   (मैं जा रहा हूँ) अच्छा।

3. **पूरक अल्पांग वाक्य :** सामान्यतः बोलचाल के वाक्यों में कुछ वाक्यों के एक-दो घटक वाक्य के बाद एक अन्य अल्पांग वाक्य के रूप में आते हैं, मानो वे बाद में आए पूरक विचार हों, जैसे :

   मैं कल लौटूँगा। तीन बजे।
   वह आज आ रहा है। शाम की गाड़ी से।

4. **संयुक्त अल्पांग वाक्य :** वाक्य में समानधर्मी घटकों के दोहराव से बचने के लिए वक्ता प्रायः उनमें से एक घटक का लोप कर देता है। यह लक्षण लगभग सभी भाषाओं में मिलता है। देखिए :

   मैं भी घर जाऊँगा लेकिन अभी नहीं।
   माँ सो रही है और बच्ची भी।

5. **आज्ञार्थक अल्पांग वाक्य :** लगभग सभी भाषाओं में आज्ञार्थक वाक्यों में सामान्यतः मध्यम पुरुष (तुम, आप, तू) का लोप हो जाता है। देखिए :

   (आप) आइए।
   (तुम) एक कप चाय लाओ।

10.6 सारांश

- वाक्यविज्ञान भाषा की उस प्रक्रिया और नियम-व्यवस्था का अध्ययन करता है जिनसे शब्द एक दूसरे के योग से वाक्य की रचना करते हैं।
- घटकों के बीच वाक्यात्मक संबंध दो प्रकार के होते हैं : वाक्य विन्यासात्मक और रूपावली संबंध।
- व्याकरणिक स्तर पर भाषा की मूल इकाई वाक्य है और संदेश-संप्रेषण के स्तर पर भाषा की मूल इकाई प्रोक्ति है।
- वाक्य में व्याकरणिक दृष्टि से कम से कम दो अवयवों का होना ज़रूरी होता है - उद्देश्य और विधेय।
- भाषा-संरचना के तीन प्रमुख स्तर हैं : ध्वनि, व्याकरण और अर्थ।
- वाक्य से छोटा घटक उपवाक्य है। एक वाक्य में एक उपवाक्य भी हो सकता है और एक से अधिक भी।
- उपवाक्य दो प्रकार के हो सकते हैं - आश्रित तथा स्वतंत्र।
- जिन वाक्यों में दोनों उपवाक्य स्वतंत्र होते हैं उन्हें संयुक्त वाक्य कहते हैं।
- जिन उपवाक्यों में एक उपवाक्य स्वतंत्र तथा शेष आश्रित उपवाक्य होते हैं उन्हें मिश्रवाक्य कहते हैं।

- पदबंध वाक्य में निर्धारित व्याकरणिक प्रकार्यों को पूरी करने वाली इकाइयाँ हैं जिनका अस्तित्व केवल वाक्य के अंतर्गत ही संभव है।
- वाक्य रचना प्रक्रिया की पाँच प्रमुख वाक्यात्मक युक्तियाँ हैं : पदक्रम, कारक संबध, अन्विति, अर्थसंगति और अध्याहार।
- किसी घटक विशेष के प्रभाव में रूप बदलने की प्रक्रिया अन्विति कहलाती है।
- पूर्णांग वाक्यों में वाक्य के सभी घटक मौजूद रहते हैं। अल्पांग वाक्यों में एक या अधिक घटकों का लोप रहता है।
- अल्पांग वाक्य की कुछ प्रमुख कोटियाँ हैं : वृत्तिसूचक, संदर्भ आश्रित, पूरक, संयुक्त तथा आज्ञार्थक।

10.7 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

(1) वाक्य का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

(2) वाक्यात्मक युक्तियों की संकल्पना को सोदाहरण समझाइए।

2. टिप्पणी लिखिए

(1) वाक्य और उपवाकय का संबंध

(2) पदबंध की संकल्पना

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

अभ्यास-1

(क) नीचे दिए कुछ कथन सही हैं और कुछ गलत। सही कथन के आगे (✓) तथा गलत कथन के आगे (x) का निशान लगाएँ

i) मूल वाक्य साँचों से ही भाषा के समस्त वाक्य प्रजनित हों यह ज़रूरी नहीं। (सही/गलत)

ii) संरचना की दृष्टि से वाक्य भाषा की सबसे बड़ी इकाई है। (सही/गलत)

iii) सरल वाक्य में कम से कम दो उपवाक्य आवश्यक हैं। (सही/गलत)

iv) प्रोक्ति हमेशा एक से अधिक वाक्यों की होती है। (सही/गलत)

v) संयुक्त वाक्यों में कोई भी आश्रित उपवाक्य नहीं होता। (सही/गलत)

(ख) कोष्ठक में दिए उत्तरों में से कोई एक उत्तर सही है। जो सही उत्तर हो उसे रिक्त स्थान में लिखिए।

i) पदबंधों का अध्ययन .... के अंतर्गत होता है।
(शब्द विज्ञान/रूप विज्ञान/वाक्य विज्ञान)

ii) किसी वाक्य में एक पदबंध के स्थान पर अन्य समानधर्मा पदबंधों का प्रयोग .... संबंध सूचित करता है।
(वाक्य विन्यासात्मक/रूपावली/व्याकरणिक)

iii) .... एक ऐसी रचना है जो अपने से बड़ी किसी रचना का अंग नहीं बन सकता।
(उपवाक्य/वाक्य/पदबंध)

iv) वाक्य में अंतर्निहित आंतरिक वाक्य को .... वाक्य कहते हैं।

(आधायित/आधात्री/अल्पांग)

v) संदेश-संप्रेषण की दृष्टि से .... भाषा की मूल इकाई है।

(वाक्य/प्रोक्ति/पदबंध)

(ग) निर्देश के अनुसार उत्तर दीजिए :

i) 'मैंने लड़की को यहाँ से गुजरते देखा' वाक्य में निहित दो वाक्यों को लिखिए।

1) ....

2) ....

ii) इस वाक्य में पदबंध छाँटें :

'कल आप किसके यहाँ गए थे?'

....

....

iii) 'कृपया भीतर आइए' वाक्य में उद्देश्य और विधेय का उल्लेख करें।

उद्देश्य : ....

विधेय : ....

iv) लघु इकाई से बड़ी इकाई की ओर जाते हुए इन घटकों को सही क्रम में लिखें :

रूपिम, शब्द, प्रोक्ति, स्वनिम, वाक्य, पदबंध, उपवाक्य

v) 'मेरे कमरे में रहने वाला लड़का' क्रिया विशेषण तथा संज्ञा दोनों पदबंध में शीर्ष तथा उसके विस्तार को छांटिए।

क्रिया विशेषण : ....

संज्ञा : ....

अभ्यास-2

(क) नीचे दिए कुछ कथन सही हैं और कुल गलत। सही कथन के आगे (✓) तथा गलत कथन के आगे (×) का निशान लगाएँ:

i) पदक्रम का विधान हर भाषा में एक समान होता है। (सही/गलत)

ii) अंग्रेज़ी की तुलना में हिंदी का पदक्रम अधिक लचीला है। (सही/गलत)

iii) हिंदी में कर्ता तथा क्रिया वाक्य के अनिवार्य घटक हैं, (सही/गलत)

iv) वाक्य में कर्ता ही यह निश्चित करता है कि वाक्य में कितने और कौन-कौन से कारकों की अपेक्षा है। (सही/गलत)

v) हिंदी में संज्ञा के वचन, पुरुष, लिंग की अन्विति का प्रभाव केवल विशेषण और क्रिया पर पड़ता है। (सही/गलत)

(ख) कोष्ठक में दिए उत्तरों में से कोई एक उत्तर सही है। जो उत्तर सही हो उसे रिक्त स्थान में लिखिए।

i) हिंदी .... भाषा है। (SOV/SVO/VSO)

ii) जिसकी हितपूर्ति क्रिया से हो उसे .... कारक कहते हैं। (अपादान/अधिकरण/संप्रदान)

iii) वचन, लिंग, पुरुष भाषा की .... कोटियाँ हैं। (संरचनात्मक/व्याकरणिक/अर्थपरक)

iv) वाक्य के किसी घटक विशेष के प्रभाव में रूप बदलने की प्रक्रिया को .... कहते हैं। (अध्याहार/कारक/अन्विति)

v) 'मुझे उनकी चिट्ठी भी मिल गई और पैसे भी' .... अल्पांग वाक्य है। (संदर्भ आश्रित/पूरक/संयुक्त)

उत्तर

अभ्यास-1

(क) i) गलत
ii) सही
iii) गलत
iv) गलत
v) सही

(ख) i) वाक्यविज्ञान
ii) रूपावली
iii) वाक्य
iv) आधायित
v) प्रोक्ति

(ग) i) मैंने देखा। लड़की यहाँ से गुज़र रही थी।
ii) कल/ आप/ किसके/ यहाँ/ गए थे।
iii) उद्देश्य : (आप)
विधेय : कृपया भीतर आइए। इस वाक्य में उद्देश्य प्रच्छन्न है।
iv) स्वनिम : रूपिम - शब्द - पदबंध - उपवाक्य - वाक्य - प्रोक्ति
v) संज्ञा : शीर्ष - लड़का
क्रिया विशेषण : शीर्ष - कमरा विस्तार - मेरे ... में
विस्तार : मेरे कमरे में रहने वाला लड़का

अभ्यास-2

(क) i) गलत
ii) सही
iii) सही
iv) गलत
v) सही

(ख) i) SOV
ii) संप्रदान
iii) व्याकरणिक
iv) अन्विति
v) पूरक
(ग) उत्तर कृपया इकाई से जाँच करें।

इकाई 11 वाक्य संरचना-II

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 वाक्य विश्लेषण के स्तर
11.2.1 संरचनापरक
11.2.2 प्रकार्यपरक
11.2.3 लौकिक अर्थपरक
11.2.4 सूचनापरक
11.3 वाक्य साँचे
11.3.1 प्रकार्य स्थान
11.3.2 वाक्य-विन्यासात्मक संबंध
11.3.3 रूपावली संबंध
11.3.4 अनिवार्य तथा ऐच्छिक घटक
11.4 आधारभूत वाक्य
11.4.1 स्वरूप और लक्षण
11.4.2 आधारभूत वाक्यों के प्रकार्य
(क) कोप्यूला वाक्य साँचा
(ख) को-वाक्य साँचे
(ग) क्रियाप्रधान वाक्य
11.5 व्युत्पन्न वाक्य-साँचे
11.5.1 पदबंध विस्तार द्वारा
11.5.2 ऐच्छिक घटक के योग द्वारा
11.5.3 लोप प्रक्रिया द्वारा
11.5.4 रूपांतरण प्रक्रिया द्वारा
11.6 सारांश
11.7 अभ्यास प्रश्न

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- वाक्य-विश्लेषण के विभिन्न स्तरों को समझ सकेंगे,
- आप वाक्य की संरचनापरक, प्रकार्यपरक, लौकिक अर्थपरक और सूचनापरक कोटियों के बीच अंतर समझ सकेंगे,
- आप वाक्य और वाक्य-साँचों के बीच अंतर स्पष्ट कर सकेंगे,
- आप हिंदी के आधारभूत वाक्यों की संरचना और उनके महत्व को समझ सकेंगे,
- आप हिंदी के 14 आधारभूत वाक्य-साँचों का वर्गीकरण कर सकेंगे और उनके बीच भेद समझा सकेंगे, और
- आप हिंदी के आधारभूत वाक्यों से व्युत्पन्न विभिन्न वाक्यों और उनकी रचना-प्रक्रियाओं को स्पष्ट कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई-10 (वाक्य संरचना-1) में आपने वाक्य विज्ञान, वाक्य के स्वरूप, वाक्य संरचना और वाक्यात्मक युक्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त की।

इस इकाई में आपको वाक्य-विश्लेषण के विभिन्न स्तरों का परिचय दिया जाएगा और वाक्य और वाक्य-साँचों के बीच अंतर स्पष्ट किया जाएगा। इस इकाई में आपको हिंदी के आधारभूत वाक्यों से परिचित कराया जाएगा और उनके विशिष्ट लक्षणों की जानकारी दी जाएगी। इस इकाई में आप इन आधारभूत वाक्यों से व्युत्पन्न विभिन्न वाक्यों की रचना-प्रक्रिया के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे।

11.2 वाक्य विश्लेषण के स्तर

विद्वान एक लंबे अरसे से वाक्य की वास्तविक बनावट और उसके तत्वों को समझने की कोशिश करते रहे हैं। उन्होंने वाक्य के विभिन्न पहलुओं को कई दृष्टियों से विश्लेषित करने का प्रयास किया। वाक्य की जितनी गहराई में जाने का प्रयास किया गया उतना ही यह स्पष्ट होने लगा कि वाक्य में एक नहीं बल्कि अनेक तहें हैं और उन सबके साथ संयोजित होकर ही वाक्य अपना अभीष्ट अर्थ व्यक्त करने में सफल होता है। लोक-व्यवहार में वाक्य का अंतिम लक्ष्य संदेश-संप्रेषण है। संप्रेषण के स्तर पर देखें तो पता चलेगा कि वाक्य की अभिव्यक्ति मात्र ध्वनियों, व्याकरणिक रचनाओं और अर्थ तत्वों (भावों) का मिला-जुला रूप नहीं है। वाक्य के पीछे प्रायः एक सामाजिक व्याकरण भी छिपा रहता है जो यह निर्देश देता है कि किस परिवेश या संदर्भ में किस वाक्य या अभिव्यक्ति का प्रयोग उपयुक्त है। इसके अलावा वाक्य में कभी-कभी वक्ता का निजी दृष्टिकोण, मंतव्य या उसकी अपनी अभिवृत्ति भी निहित रहती है। इस संपूर्ण परिवेश में ही वाक्य संप्रेषणीय होता है।

स्पष्ट है कि वाक्य की रचना पर कई प्रकार के प्रतिबंध हैं - संरचनागत, व्याकरणगत, अर्थगत, संदर्भगत आदि। वाक्य की बाह्य संरचा के पीछे अर्थ-संरचना का एक पूरा जाल फ़ैला है जो कई प्रकार से वाक्य की बाह्य संरचना को प्रभावित और नियंत्रित करता है। अतः वाक्य के मर्म तक पहुँचने के लिए वाक्य का विश्लेषण कई स्तरों पर करने की आवश्यकता पड़ती है।

उदाहरण के लिए अगर हम वाक्य के घटकों का विश्लेषण संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया आदि संरचनात्मक कोटियों (शब्द-वर्गों) के रूप में करें तो वाक्य में इन घटकों के परस्पर व्याकरणिक संबंधों की जानकारी हमें नहीं मिल सकती। यदि व्याकरणिक संबंधों को स्पष्ट करने क लिए कर्ता, कर्म, पूरक, क्रिया आदि प्रकार्यात्मक कोटियों के आधार पर वाक्य का विश्लेषण करें तो लौकिक जगत में इन घटकों की वास्तविक भूमिका का बोध हमें नहीं होता। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दो वाक्य देखिए :

रामू पिट रहा है।
लड़के को चोट लगी।

यदि इन वाक्यों में 'रामू' और 'लड़के' को कर्ता की कोटि में रखते हैं तो प्रश्न उठता है कि वह व्यक्ति जो पीट नहीं रहा है बल्कि खुद पिटाई का शिकार हो रहा है या जो खुद चोट का भोक्ता है, चोट लगाने वाला नहीं, वह कैसे कार्य करने वाला 'कर्ता' हो सकता है?

इतना ही नहीं यदि आप वाक्य को उसकी पूर्णता में देखें तो पाएँगे कि वाक्य में एक स्तर सूचना संरचना का भी है जिसमें एक अंश पूर्वज्ञात सूचना का है और दूसरा अंश नई सूचना का।

इस प्रकार किसी भी वाक्य का विश्लेषण कम से कम चार स्तरों पर किया जा सकता है: (क) संरचनापरक, (ख) प्रकार्यपरक, (ग) लौकिक अर्थपरक, और (घ) सूचनापरक।

11.2.1 संरचनापरक

इस स्तर पर वाक्य के विभिन्न घटकों (शब्दों) की संरचनात्मक कोटियों (या शब्द-वर्ग) का निर्धारण किया जाता है, जैसे संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रियाविशेषण, क्रिया आदि। उदाहरण के लिए 'महीप सिंह स्टेशन से अभी-अभी लौटा' वाक्य की संरचनात्मक कोटियाँ इस प्रकार निश्चित होंगी :

महीपसिंह	:	संज्ञा
स्टेशन	:	संज्ञा
से	:	परसर्ग
अभी-अभी	:	क्रियाविशेषण
लौटा	:	क्रिया

11.2.2 प्रकार्यपरक

इस स्तर पर वाक्य के घटकों का निर्धारण वाक्य में उनकी व्याकरणिक भूमिकाओं के आधार पर किया जाता है, जैसे कर्ता, कर्म, पूरक, क्रियाविशेषण, क्रिया आदि। ये एक प्राकर की कारक कोटियाँ हैं और इनका अस्तित्व केवल वाक्य के ही अंतर्गत होता है, वाक्य से बाहर नहीं। इसके विपरीत संरचनात्मक कोटियों (संज्ञा, विशेषण आदि) का अस्तित्व वाक्य से बाहर केवल शब्दों के स्तर पर भी संभव है।

उदाहरण के लिए, 'लोगों ने महीपसिंह को अपना नेता चुना' वाक्य की प्रकार्यात्मक कोटियाँ इस प्रकार होंगी :

लोगों ने	:	कर्ता
महीपसिंह को	:	कर्म
अपना नेता	:	पूरक
चुना	:	क्रिया

11.2.3 लौकिक अर्थपरक

लौकिक अर्थ के स्तर पर वाक्य के घटकों का निर्धारण लौकिक या वास्तविक जगत में उनकी भूमिकाओं के आधार पर होता है। प्रकार्यात्मक कोटियाँ व्याकरणिक जगत में उनकी भूमिकाओं के आधार पर निर्धारित होती हैं जबकि लौकिक अर्थ की कोटियाँ वास्तविक जगत में उनकी भूमिकाओं के आधार पर निर्धारित होती हैं, जैसे अभिकर्ता (सक्रिय कर्ता), अनुभवकर्ता, भोक्ता, लक्ष्य (कर्म), परिवेश (क्रिया विशेषण आदि) आदि।

उदाहरण के लिए 'लड़के को चोट लगी' वाक्य की लौकिक अर्थ कोटियाँ इस प्रकार होगी:

लड़के को	:	अनुभवकर्ता (experiencer)
चोट लगी	:	क्रिया

इसी प्रकार 'सतीश फल खा रहा है' वाक्य की कोटियाँ होंगी :

सतीश	:	अभिकर्ता (agent)
फल	:	लक्ष्य (गोल)
खा रहा है	:	क्रिया

11.2.4 सूचनापरक

कई भाषावैज्ञानिक भाषा की मूल इकाई वाक्य को नहीं बल्कि प्रकरण (text) को मानते हैं क्योंकि वक्ता अपना संदेश संप्रेषित करने क लिए ऐसे विकल्पों का चयन करता है जो विशेष प्रकरण या प्रसंग के अनुकूल होता है। वह वाक्य को सूचना या संदेश के रूप में गठित करता है। इसलिए वह कभी वाक्य के किसी घटक को वाक्य के सबसे पहले लाता है कभी किसी को बीच में और किसी को अंत में। वह कभी-कभी वाक्य के सहज क्रम में भी

परिवर्तन करता है, किसी विशेष घटक पर अन्य की अपेक्षा अधिक बलाघात देता है। इस प्रकार हम पाते हैं कि जिस प्रकार वाक्य की व्याकरणिक संरचना होती है उसी प्रकार सूचना की भी अपनी संरचना होती है।

सूचना के स्तर पर दो घटकों की स्थिति मानी जाती है : ज्ञात सूचना और नई सूचना। सूचना का जो अंश श्रोता को पहले से ज्ञात है वह **ज्ञात सूचना** (विद्यमान सूचना) कहलाती है। **नई सूचना** वह है जिसकी जानकारी देना वक्ता का अभीष्ट है, जैसे 'रमेश आज नहीं आएगा' वाक्य की सूचना संरचना इस प्रकार है :

रमेश :	ज्ञात सूचना
आज नहीं आएगा :	नई सूचना

इसी प्रकार सूचना संयोजन की दृष्टि से भी वाक्य के दो खंड हो सकते हैं : थीम (theme) और रीम (rheme)। वाक्य के प्रारंभ में जो भी घटक प्रयुक्त होता है वह 'थीम' है और शेष अंश 'रीम'। देखिए :

थीम	**रीम**
सीता	किताब पढ़ रही है।
शायद	वह कल न आए।
दूर कहीं	कोई रो रहा है।
यह चिट्ठी	मैंने नहीं लिखी
बुलाया	मैंने आपको (आ गया आपका दोस्त)

11.3 वाक्य साँचे

किसी भी भाषा में अगणित वाक्यों की रचना संभव है, लेकिन वाक्य-विश्लेषण के किसी एक आधार पर इन वाक्यों को कुछ खास कोटियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। यह वर्गीकरण सामान्यतः व्याकरणिक प्रकार्यों के आधार पर किया जाता है यद्यपि वाक्य-विश्लेषण के ऊपर बताए चारों आधारों पर यह वर्गीकरण संभव है। परंपरागत रूप से वाक्यों को अकर्मक, सकर्मक, द्विकर्मक, कर्तपूरक आदि वर्गों में विभाजित करने की पद्धति व्याकरणिक प्रकार्यों पर आधारित है। प्रकार्य के आधार पर वाक्य-कोटियाँ इस प्रकार दर्शाई जाती हैं :

कर्ता × क्रिया	(रमेश हँसता है।)
कर्ता × कर्म × क्रिया	(रमेश फल खाता है।)
कर्ता × कर्म^{2}" कर्म^{1} × क्रिया	(रमेश राधा को किताब देता है।)

(ध्यान दें कि लौकिक अर्थपरक की दृष्टि से कर्म^{2} को प्राप्तिकर्ता भी कहा जा सकता है।) ये वाक्य नहीं हैं बल्कि वाक्यों के ढाँचे हैं जिनमें समानधर्मा अनेक वाक्यों का समावेश रहता है। वाक्य के इस प्रकार के प्रकार्यात्मक ढाँचे को **वाक्य-साँचा** कहते हैं। भाषा में वास्तविक वाक्यों की संख्या अनगिनत हो सकती है, लेकिन वाक्य-साँचों की संख्या निश्चित और सीमित होती है। वाक्य-साँचों की संख्या और उनका स्वरूप हर भाषा में अलग-अलग हो सकते हैं।

यहाँ पर वाक्य और वाक्य-साँचे के बीच मूलभूत अंतर समझ लेना ज़रूरी है। वाक्य विभिन्न पदबंधों से निर्मित एक मूर्त और निश्चित रचना है। वाक्य-साँचा इन पदबंधों की प्रकार्यात्मक कोटियों से निर्मित एक अमूर्त ढाँचा है जिसमें उपयुक्त शब्दों को आरोपित कर अगणित वाक्य बनाए जा सकते हैं। वाक्य का एक मूर्त और निश्चित अस्तित्व होता है। वाक्य-साँचा उसका एक अमूर्त और प्रतीकात्मक ढाँचा होता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्दों की संख्या सीमित

होती है, लेकिन वाक्य-साँचों के विभिन्न घटकों के स्थान पर प्रयुक्त हो सकने वाले संभावित शब्दों की संख्या असीमित हो सकती है।

वाक्य-साँचों की अपनी एक आंतरिक संरचना होती है और विभिन्न घटकों के विन्यास के अपने नियम होते हैं। कुछ प्रमुख नियम इस प्रकार हैं :

11.3.1 प्रकार्य-स्थान

वाक्य-साँचे में प्रत्येक घटक के प्रयोग का एक निश्चित स्थान होता है जिसे **प्रकार्य-स्थान** कहते हैं। प्रत्येक प्रकार्य-स्थान पदबंध स्तरीय होता है और एक पदबंध का प्रतिनिधित्व करता है। वाक्य-साँचे के निर्धारण में पदबंध से नीचे किसी अन्य कोटि को नहीं लिया जा सकता। प्रकार्य-स्थान संज्ञा पदबंध का भी हो सकता है (राम का बड़ा भाई), क्रिया विशेषण पदबंध का भी (कमरे में), क्रिया पदबंध का भी (खा रहा है) और स्वतत्र विशेषण पदबंध का भी (मोहन बहुत बीमार है) लेकिन संज्ञा पदबंध में जुड़े विशेषण पदबंध का नहीं (जैसे 'काला घोड़ा' में 'काला' विशेषण पदबंध नहीं)।

11.3.2 वाक्य-विन्यासात्मक संबंध

प्रत्येक वाक्य-साँचे की एक निश्चित वितरण-व्यवस्था होती है और उसके विभिन्न घटक एक-दूसरे से व्याकरणिक संबंधों के ज़रिए जुड़े रहते हैं, अर्थात् उनमें एक प्रकार का कारकीय संबंध होता है और घटक वाक्य में एक के बाद एक क्रम से आते हैं। इस प्रकार के संबंध को रेखीय या वाक्य-विन्यासात्मक (syntaymatic) संबंध कहते हैं, जैसे हिंदी वाक्य में कर्ता-कर्म-क्रिया विशेषण - क्रिया के बीच संबंध। वाक़्य साँचों के घटकों में एक व्यावहारिक सीमा तक रेखीय विस्तार संभव है, जैसे :

लड़की/ पत्र/ लिख रही है।
आज/ लड़की/ सुबह से/ कमरे में/ पत्र लिख रही है।

11.3.3 रूपावली संबंध

आपने देखा कि वाक्य-साँचे का प्रत्येक घटक अन्य घटकों से रेखीय संबंध से जुड़ा रहता है लेकिन दूसरी ओर यही घटक अपने ही वर्ग के अन्य शब्दों से भी जुड़ा रहता है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक घटक के प्रकार्य-स्थान पर उस वर्ग के अन्य शब्द भी प्रयुक्त हो सकते हैं। उदाहरण क लिए ऊपर के वाक्य (1) में 'लोग' के स्थान पर'हम', 'सभी लोग', 'यहाँ पढ़ने वाले छात्र' आदि संज्ञा शब्द प्रयुक्त हो सकते हैं। इसी प्रकार 'आते हैं' क्रियापदबंध के स्थान पर 'जाते हैं', 'रहते हैं' आदि क्रियापदबंध प्रयुक्त हो सकते हैं। एक ही वर्ग के इन शब्दों के बीच **रूपावली (paradigmatic) संबंध** माना जाता है।

एक प्रकार्य स्थान पर प्रयुक्त हो सकने वाले ऐसे शब्दों को **शब्द-वर्ग** कहा जाता है। इनके कई संरचनातमक वर्ग संभव हैं, जैसे संज्ञा शब्द-वर्ग, विशेषण शब्द-वर्ग, क्रिया विशेषण शब्द-वर्ग, क्रिया शब्द-वर्ग आदि। किसी भी शब्द-वर्ग के शबदों की संख्या असीमित हो सकती है और इसलिए विभिन्न प्रकार्य-स्थानों पर उपयुक्त शब्द-वर्गों के शब्द का प्रयोग करते हुए एक ही वाक्य साँचे से असीमित संख्या में वाक्य बनाए जा सकते हैं।

वाक्य-साँचे के विभिन्न घटकों के बीच वाक्य विन्यासात्मक तथा रूपावली संबंधों के इन दो आयामों को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है :

कर्ता		**क्रि.वि.**		**कर्म**		**क्रिया**
लड़के	→	होटल में	→	खाना	→	खाते हैं।
हम	→	घर में	→	अख़बार	→	पढ़ते हैं।
मैं	→	यहाँ	→	काम	→	करते हैं।

इसमें → चिह्न वाक्य विन्यासात्मक (रेखीय) संबंध दर्शाता है और चिह्न ↓ रूपावली संबंध दर्शाता है।

11.3.4 अनिवार्य तथा ऐच्छिक घटक

वाक्य-साँचों के पदबंध घटक दो प्रकार के होते हैं - अनिवार्य तथा ऐच्छिक। अनिवार्य घटक वे हैं जिन्हें वाक्य से निकाल देने पर वाक्य व्याकरण या मूल अर्थ की दृष्टि से टूट जाता है, जैसे 'मैं आज खाना नहीं खाऊँगा' वाक्य में 'मैं' और 'खाऊँगा' दो अनिवार्य घटक हैं क्योंकि इनमें से किसी भी घटक को हटा देने से वाक्य व्याकरण और अर्थ की दृष्टि से भंग हो जाता है। इसके विपरीत 'आज' एक ऐच्छिक घटक है, क्योंकि इसे वाक्य से हटा देने पर भी वाक्य व्याकरण तथा मूल अर्थ की दृष्टि से पूर्ण रहता है। स्मरण रहे कि इस प्रकार की अतिरिक्त सूचनाएँ प्रायः क्रियाविशेषण पदबंधों द्वारा दी जाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि क्रियाविशेषण अनिवार्यतः ऐच्छिक घटक होते हैं। कुछ वाक्यों में क्रियाविशेषण अनिवार्य घटक के रूप प्रयुक्त होते हैं और उन्हे वाक्य से हटा देने पर वाक्य भंग हो जाता है, जैसे 'रमेश घर में है' वाक्य में क्रिया विशेषण पदबंध 'घर में' को वाक्य से नहीं हटा सकते।

11.4 आधारभूत वाक्य

11.4.1. स्वरूप और लक्षण

किसी भी भाषा की वाक्य-व्यवस्था को समझने के लिए उस भाषा के मूल वाक्यों का निर्धारण करना ज़रूरी है। भाषा में वाक्य कई आकार-प्रकार में व्यक्त होकर आते हैं। वाक्य एक उपवाक्य का भी हो सकता है, एक से अधिक उपवाक्यों का भी। वाक्य का आकार छोटा भी हो सकता है और बड़ा भी। कभी-कभी एक ही वाक्य के भीतर दूसरा वाक्य संज्ञापदबंध आदि के रूप में संकुचित होकर आ सकता है (जैसे, 'वह वापस लौटने की सोच रहा है')। कुछ वाक्य अल्पांग वाक्य के रूप में व्यक्त होकर आते हैं, कुछ पूर्णांग वाक्य के रूप में (जैसे, 'मैं शिवकुमार हूँ। और आप?')।

भाषा-व्यवस्था की यह विशिष्टता है कि वाक्य चाहे जितना बड़ा, छोटा या जटिल हो उसमें एक आधारभूत वाक्य की सत्ता अवश्य रहती है। यह आधारभूत वाक्य एक प्रकार का बीज वाक्य है जिससे भाषा के अनेक वास्तविक वाक्य ज़नित होते हैं। देखिए :

वास्तविक वाक्य : इस कक्षा के सभी छात्र आजकल रोज हिंदी का समाचार पत्र पढ़ते हैं।

आधारभूत वाक्य : छात्र समाचार पत्र पढ़ते हैं।

ऐसे वाक्य जिनके सभी घटक अनिवार्य हों आधारभूत वाक्य कहलाते हैं। आधारभूत वाक्यों के साँचे आधारभूत वाक्य-साँचे कहलाते हैं। इन्हें बीज वाक्य साँचे या मूल वाक्य-साँचे भी कहा जाता है। आधारभूत वाक्य-साँचों में भाषा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के वाक्य व्युत्पन्न करने की क्षमता निहित रहती है। किसी भी भाषा में आधारभूत वाक्य-साँचों की संख्या सीमित होती है। इन सीमित आधारभूत वाक्य साँचों में ऐच्छिक घटकों के योग से या वाक्य रूपांतरण द्वारा उस भाषा के अनगिनत वाक्य बनाए जा सकते हैं।

हर भाषा के आधारभूत वाक्यों का स्वरूप और उनकी संख्या अलग-अलग हो सकती है। उनके निर्धारण के लिए भी अलग-अलग मानदंड प्रयुक्त किए जा सकते हैं। फिर भी मोटे रूप से आधारभूत वाक्यों के निर्धारण के लिए कुछ लक्षण महत्वपूर्ण हैं :

(क) **अनिवार्य घटक :** आधारभूत वाक्य-साँचों में केवल अनिवार्य घटकों को ही स्थान दिया जाता है, ऐच्छिक घटकों को नहीं। 'सतीश चाय पीता है' आधारभूत वाक्य हैं, क्योंकि इनके तीनों घटक अनिवार्य हैं। 'सतीश कभी-कभी चाय पीता है' वाक्य में

'कभी-कभी' एक ऐच्छिक घटक है, क्योंकि इसके बिना भी वाक्य व्याकरण और मूल अर्थ की दृष्टि से पूर्ण है। अतः यह ऐच्छिक घटक आधारभूत वाक्य का अंग नहीं हो सकता।

(ख) **कथनात्मक वाक्य :** आधारभूत वाक्य-साँचों में हमेशा सरल कथनात्मक वाक्यों को ही रखा जाता है, संयुक्त, मिश्र या अल्पांग वाक्यों को नहीं। इसी प्रकार प्रश्नार्थक, नकारात्मक, आज्ञार्थक, अकार्तवाच्य आदि संदर्भ-विशिष्ट वाक्यों को आधारभूत वाक्यों में नहीं शामिल किया जाता, क्योंकि ऐसे सभी वाक्य आधारभूत वाक्यों से व्युत्पन्न या रूपांतरित (transform) किए जा सकते हैं।

(ग) **नियंत्रक तत्व–क्रिया :** आधारभूत वाक्य-साँचों के निर्धारण में सामान्यतः क्रिया को ही आधार माना जाता है क्योंकि क्रिया की प्रकृति और माँग के अनुसार ही वाक्य की रचना निर्धारित होती है और वाक्य में आने वाले पात्रों (कर्ता, कर्म आदि) की संख्या नियंत्रित होती है। उदाहरणार्थ, 'हँसना' क्रिया (अकर्मक) एक पात्र (कर्ता) की अपेक्षा करता है, 'पीना' क्रिया (सकर्मक) दो पात्रों (कर्ता, कर्म) की और 'देना' क्रिया (द्विकर्मक) तीन पात्रों (कर्ता, कर्म, संप्रदान) की। ये तीनों क्रियाएँ अलग-अलग आधारभूत वाक्य-साँचों का निर्माण करती हैं। कुछ वाक्यों में जिनमें कोशीय क्रियाओं का प्रयोग नहीं होता, विधेय अंश वाक्य को नियंत्रित करता है जैसे 'रमेश को खांसी है' वाक्य में 'खांसी' और 'मोहन लेखक है' में 'लेखक' वाक्य के नियंत्रक तत्व हैं।

11.4.2 आधारभूत वाक्यों के प्रकार्य

आधारभूत वाक्यों तथा वाक्य-साँचों की संख्या हर भाषा में अलग-अलग हो सकती है। स्वयं एक भाषा में भी अलग-अलग आधारों पर इनकी संख्या में अंतर आ सकता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि आधारभूत वाक्यों के निर्धारण के लिए हम क्या प्रतिमान अपनाते हैं और संरचना और अर्थ के बीच कितना गहरा संबंध हमें अभीष्ट है। हिंदी में अलग-अलग प्रतिमानों के आधार पर विद्वानों ने 4 से 21 तक आधारभूत वाक्य गिनाए हैं।

नीचे हम सूरजमान सिंह (1985) द्वारा निर्धारित 14 आधारभूत वाक्यों की सूची दे रहे हैं:

क) **कोप्यूला वाक्य**

1. संज्ञात्मक कोप्यूला वाक्य : रफ़ी मेरा ड्राइवर है।
2. विशेषणात्मक कोप्यूला वाक्य : राधा सुंदर है।
3. क्रिया विशेषणात्मक वाक्य : सतीश घर में है।

ख) **को-वाक्य**

4. पूरक प्रधान को वाक्य : सुधीर को बुखार है।
5. कर्मप्रधान को-वाक्य : सीता को मकान चाहिए।
6. कर्मपूरक प्रधान वाक्य : राधा को नौकर चोर लगता है।
7. स्वामित्ववाची वाक्य : मोहन के पास तीस रुपए हैं।

ग) **क्रियाप्रधान वाक्य**

8. सामान्य अकर्मक : ईश्वर है/ राधा नाचती है।
9. सहअव्ययात्मक अकर्मक : प्रताप गांधीनगर में रहता है।
10. सहपात्रीय अकर्मक : गोपाल राधा से लड़ता है।
11. सामान्य अकर्मक : हरी पानी पीता है।
12. सहअव्ययात्मक सकर्म : मोहन गाड़ी गैरेज में रखता है।
13. सहपात्रीय सकर्मक : सेठजी नौकर को पैसे देते हैं।
14. कर्मपूरक वाक्य : मैं चंपा को नर्स समझता था।

इन आधारभूत वाक्यों को वाक्य-साँचों के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

क) कोप्यूला वाक्य-साँचा

1. संप × संप × योजक क्रिया : रफी मेरा ड्राइवर है।
2. संप × विप × योजक क्रिया : राधा सुंदर है।
3. संप × क्रि.वि. × योजक क्रिया : सतीश घर में है।

ख) को-वाक्य साँचे

4. संप+को × संप(पूरक) × को-क्रियाकर : सुधीर को बुखार है।
5. संप+को × संप(कर्म) × को-क्रिया : सती को मकान चाहिए।
6. संप+को " संप(कर्म) × पूरक × को-क्रिया: राधा को नौकर चोर लगता है।
7. संप+के पास × संप × हो-क्रिया : मोहन के पास तीस रुपए हैं।

ग) क्रिया प्रधान वाक्य-साँचे

8. कर्ता × क्रिया : ईश्वर है/ राधा नाच रही है।
9. कर्ता × अप × क्रिया : प्रताप गांधीनगर में रहता है।
10. कर्ता × सहपात्र × क्रिया : गोपाल राधा से लड़ता है।
11. कर्ता × कर्म × क्रिया : हरी पानी पीता है।
12. कर्ता × कर्म × अप × क्रिया : मोहन गाड़ी गैरेज में रखता है।
13. कर्ता × सहपात्र × कर्म × क्रिया : सेठजी नौकर को पैसे देते हैं।
14. कर्ता × कर्म × कर्मपूरक × क्रिया : मैं चंपा को नर्स समझता था।

(संप= संज्ञा पदबंध, विप = विशेषण पदबंध, अप = अव्यय पदबंध)

आप पाएँगे कि उपर्युक्त वर्गीकरण में हिंदी के सभी आधारभूत वाक्यों को तीन वर्गों में रखा गया है : कोप्यूला वाक्य, को-वाक्य और क्रिया प्रधान वाक्य।

(क) कोप्यूला वाक्य

कोप्यूला वाक्य वे वाक्य हैं जिनमें कर्ता और पूरक किसी योजक क्रिया के माध्यम से जुड़े होते हैं, जैसे 'मोहन अध्यापक है', 'सरला सुंदर है', 'माताजी घर में हैं'। इन वाक्यों के कर्ता आचिह्नित होते हैं, अर्थात् इनके बाद किसी परसर्ग (को, के, में आदि) का प्रयोग नहीं होता। इन वाक्यों के पूरक संज्ञा, विशेषण या क्रिया-विशेषण में से कोई भी हो सकता है, जैसे ऊपर के वाक्यों में 'अध्यापक' 'सुंदर' और 'घर में'।

कोप्यूला वाक्यों में कर्ता और पूरक कुछ विशेष संबंधों से जुड़े होते हैं। जैसे 'मोहन अध्यापक है' वाक्य में 'मोहन' और 'अध्यापक' एक ही व्यक्ति का बोध कराते हैं। यहाँ दोनों के बीच 'अभिनिर्धारित - अभिनिर्धारक' का संबंध है, अर्थात् 'अध्यापक' 'मोहन' की पहचान बताता है (जैसे मोहन कौन है? मोहन अध्यापक है)।

इसी प्रकार 'सरला सुंदर है' वाक्य में कर्ता और पूरक के बीच विशेष्य-विशेषण का संबंध है। क्रिया विशेषणात्मक कोप्यूला वाक्य में (जैसे 'माताजी कमरे में हैं) पूरक कर्ता की अवस्थिति सूचित करता है।

कोप्यूला वाक्यों में क्रिया के प्रकार्य-स्थान पर 'योजक क्रिया' का प्रयोग होता है। इसी को अंग्रेज़ी में 'कोप्यूला' क्रिया भी कहते हैं। copula का लैटिन में अर्थ है 'जोड़ना'। प्रमुख योजक क्रियाएँ हैं - है, था, होता, तथा इनके समानधर्मा रूप। अन्य सामान्य क्रियाओं (जैसे,

पीना, देखना, जाना आदि) की तरह योजक क्रियाएँ अपना कोशीय अर्थ नहीं व्यक्त करतीं। इनका प्रकार्य केवल दो अस्तित्वों के बीच संबंध उद्‌घाटित करना होता है।
वाक्य-साँचों के रूप में देखें तो कोप्यूला वाक्य तीन घटकों से बनी रचना होती है, जिसका प्रत्येक घटक अनिवार्य घटक होता है। वाक्य में क्रिया विशेषण सामान्यता ऐच्छिक घटक माना जाता है, लेकिन इस कोटि के कोप्यूला वाक्यों में क्रियाविशेषण भी अनिवार्य घटक के रूप में आते हैं1 तुलना कीजितए - वाक्य (1) में 'कमरे में' अनिवार्य घटक है, वाक्य (2) में ऐच्छिक घटक :

(1) रमेश **कमरे** में है। (अनिवार्य घटक)
(2) रमेश **कमरे** में पढ़ रहा है। (ऐच्छिक घटक)

(ख) को-वाक्य

ऐसे सभी वाक्यों को जिनमें कर्ता के साथ 'को' परसर्ग का प्रयोग होता है **को-वाक्य** कहते हैं। कर्ता के साथ 'को' का प्रयोग विधेय पूरक (संज्ञा) या कुछ विशिष्ट क्रियाओं की आकांक्षा के कारण होता है। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित वाक्यों में पूरक शब्द (बुखार, भूख, खुशी) कर्ता के बाद 'को' परसर्ग की आकांक्षा करते हैं, जैसे :

(1) सुधीर को **बुखार** है।
(2) बच्चे को **भूख** लगी है।
(3) सीता को इस बात का **दुख** है।

ध्यान रहे कि संज्ञा के बाद 'को' का प्रयोग प्रायः कर्म के बाद भी होता है जैसे 'मैंने **राम को** बुलाया', 'सरला ने **राधा को** तीन सौ रुपए दिए'। ये को-वाक्यों में नहीं आते क्योंकि इन वाक्यों में 'को' का प्रयोग कर्ता के बाद नहीं बल्कि कर्म के बाद हुआ है।

निम्नलिखित वाक्यों में कर्ता के बाद 'को' का प्रयोग कोशीय क्रिया (मिलना, आना, चाहिए, लगना) की आकांक्षा के कारण हुआ है :

(1) श्री रत्नम् को हिंदी **आती** है।
(2) आपको कितने रुपए **मिलते** हैं।
(3) चाचा जी को एक कॉफी **चाहिए**।
(4) मुझे वह नौकर मूर्ख **लगता** है।

इन वाक्यों में प्रयुक्त क्रियाओं को सुविधा के लिए 'को-क्रियाएँ' कहते हैं, अर्थात् ये वे क्रियाएँ हैं जो को-वाक्य की आकांक्षा करती हैं। ध्यान रहे कि ये क्रियाएँ कर्म की अपेक्षा करती हैं पूरक की नहीं। वाक्य (4) की कोटि की क्रियाएँ कर्म तथा कर्मपूरक दोनों की आकांक्षा करती हैं। इस वाक्य में 'नौकर' कर्म है और 'मूर्ख' कर्मपूरक।

कर्ता के बाद 'को' की आकांक्षा करने वाले वाक्यों की एक और कोटि है जो उपयुक्त वाक्यों से इस रूप में भिन्न है कि इनमें 'कर्ता-को' की आकांक्षा न पूरक के कारण होती है और न क्रिया के कारण बल्कि क्रिया रूप (-ना है, -ना पड़ और -ना चाहिए) के कारण जैसेः

स्मिथ को डॉक्टर के पास **जाना है**।
कल रमेश को देर तक दफ्तर में **रुकना पड़ा**।
आपको शराब नहीं पीनी चाहिए।

ये वाक्य को-वाक्य अवश्य हैं लेकिन इन्हें आधारभूत वाक्यों में नहीं शामिल किया जाता क्योंकि ये वाक्य रूपांतरण-प्रक्रिया से प्राप्त किए जा सकते हैं, जैसे :

स्मिथ डॉक्टर के पास **जाता है** :
→ स्मिथ को डॉक्टर के पास **जाना है**।

→ स्मिथ को डॉक्टर के पास **जाना पड़ा**।

→ स्मिथ को डॉक्टर के पास **जाना चाहिए**।

को-वाक्य साँचों की कुछ विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं :

(1) को-कर्ता सामान्यतः **चेतन** होता है क्योंकि को-वाक्य द्वारा अभिव्यक्त मनोभाव या अनुमति को ग्रहण करने वाला कर्ता प्राणिवाचक संज्ञा ही हो सकता है।

(2) को-कर्ता में स्वेच्छा का अभाव होता है। वह स्वयं कोई कार्य नहीं निष्पादित करता, बल्कि स्वयं कार्य-व्यापार का भोक्ता या अनुभवकर्ता होता है। इन कार्य-व्यापारों पर कर्ता का कोई नियंत्रण नहीं होता।

(3) को-वाक्यों द्वारा अभिव्यक्त भावों को पाँच कोटियों में रखा जा सकता है :

(क) शारीरिक अनुभूति : (बुखार, प्यास, नींद, खांसी, आराम, दर्द, तक्लीफ आदि)

(ख) बौद्धिक अनुभूति (ज्ञान/बोध) से संबंधित कुछ विशिष्ट क्रियाएँ : मालमू होना, पता होना, आना, पता होना, ज्ञात होना, जानकारी होना आदि।

(ग) मनोभाव : (दुख, खुशी, गुस्सा, प्यार, घृणा, ग्लानि, सहानुभूति आदि)

(घ) पसंद/आदत : (पसंद, शौक, आदत, दिलचस्पी, रुचि आदि)

(ड.) कुछ विशिष्ट मानवीय व्यापार : (ज़रूरत, उपलब्ध, लाभ/हानि, आदि)

(जैसे : 'राम को दस रुपए की ज़रूरत है', 'आपको बहुत लाभ हुआ')

(4) कर्ता के बाद 'को' परसर्ग का प्रयोग करते हुए नियमित रूप से वाक्य बनाने की व्यवस्था हिंदी तथा अधिकांश भारतीय भाषाओं (जैसे : मराठी, तमिल, कन्नड आदि) की अपनी विशिष्टता है जो सामान्यतः अंग्रेज़ी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं में इस रूप में नहीं दिखाई देती। बंगला में ऐसे वाक्यों में 'को' के स्थान पर प्रायः संबंधवाचक 'के' (एर) का प्रयोग होता है। रेखिए :

शेखर को बुखार है।	हिंदी	- को
शेखर ला ताप आहे।	मराठी	- ला
शेखरूक्कु जुरम।	तमिल	- कु
सुधीरन्नु पनियाणु।	मलयालम	- नु
शेखरनिगे ज्वर आगिदे।	कन्नड	- गे
शेखरेर ताप आछे।	बंगला	- एर

(ग) क्रियाप्रधान वाक्य

क्रियाप्रधान वाक्यों में क्रिया ही वाक्य का मुख्य नियंत्रक तत्व होता है, अर्थात् क्रिया की आकांक्षा के अनुसार ही वाक्य के अनिवार्य घटकों की संख्या तथा स्वरूप का निर्धारण होता है। उदाहरण के लिए, अकर्मक वाक्य में मूलतः केवल कर्ता की सत्ता होती है, कर्म की नहीं (लड़का हँस रहा है)। सकर्मक वाक्यों में मूलतः कर्ता और कर्म की आकांक्षा होती है (लड़का चाय पी रहा है)। इसी प्रकार द्विकर्मक क्रियाएँ दो कर्मों की अपेक्षा करती है (रमेश ने अपने लड़के को एक नई कार दी)

परंपरागत रूप से अकर्मक, सकर्मक तथा द्विकर्मक वाक्यों की चर्चा की जाती रही है, लेकिन क्रियाओं की आकांक्षा के अनुसार अनिवार्य घटकों के वितरण पर गौर करें तो कम से कम दो ऐसे घटक मिलेंगे जो कर्म न होते हुए भी वाक्य के अनिवार्य घटक के रूप में प्रयुक्त होते हैं। ये हैं - सह अव्यय और सहपात्र। सहअव्यय सामान्यतः क्रियाविशेषण होते हैं। सहपात्र सामान्यतः संप्रदान, अपादान, स्रोत, करण आदि कुछ भी हो सकते हैं, लेकिन सहअव्यय और सहपात्र दोनों के साथ केवल एक ही शर्त यह है कि वाक्य में इनका प्रयोग अनिवार्य घटक के रूप में होना चाहिए, न कि ऐच्छिक घटक के रूप में।

उदाहरण के लिए, हँसना और रहना दोनों अकर्मक क्रियाएँ हैं, लेकिन जहाँ वाक्य (1) में हँसना क्रिया के साथ किसी अन्य घटक की आवश्यकता नहीं, वहीं वाक्य (2) में बिना सह अव्यय (गाँव में) के रहना क्रिया का प्रयोग अशुद्ध है। देखिए :

(1) रमेश हँसा। (शुद्ध)
(2) रमेश रहता है। (अशुद्ध)
(3) रमेश गाँव में रहता है। (सहअव्यय)

इसी प्रकार कुछ सकर्मक क्रियाएँ भी ऐसी होती हैं जो अपने साथ अनिवार्य घटक के रूप में सहअव्यय की आकांक्षा करती हैं, नीचे दिया वाक्य (4) बिना सहअव्यय (गैरेज में) के अधूरा है :

(4) ड्राइवर ने गाड़ी रखी। (अशुद्ध)
(5) ड्राइवर ने गाड़ी गैरेज में रखी। (सहअव्यय)

इसी प्रकार कुछ क्रियाएँ अपने अर्थ की पूर्ति के लिए अनिवार्य घटक के रूप में कर्ता और कर्म के अलावा एक अन्य पात्र की आकांक्षा करती हैं, जैसे वाक्य (6) में 'अपनी पत्नी' कर्म नहीं है, बल्कि सहवाची पात्र है जिसे हम सहपात्र कहते हैं:

(6) शेखर अपनी पत्नी से लड़ता है।

इस प्रकार क्रियाओं की आकांक्षाओं के अनुसार क्रियाप्रधान वाक्यों के निम्नलिखित वाक्य-वर्ग बनते हैं :

1) **सामान्य अकर्मक :** इस वर्ग के अंतर्गत ऐसे सभी वाक्य आते हैं जो अपने अर्थ की पूर्ति के लिए कर्म या किसी अन्य अनिवार्य घटक की आकांक्षा नहीं करते, जैसे :

(1) आपकी लड़की रो रही है।
(2) बच्चे सो गए हैं।
(3) पानी बह रहा है।

2) **सहअव्ययात्मक अकर्मक :** इस वर्ग के अंतर्गत ऐसे सभी वाक्य आते हैं जो अपने अर्थ की पूर्ति के लिए अनिवार्य घटक के रूप में कर्म की नहीं बल्कि किसी सहअव्यय (क्रियाविशेषण) की आकांक्षा करते हैं, जैसे :

(1) वे लोग स्टेशन पहुँच गए हैं। (सहअव्यय)
(2) हम इसी होटल में ठहरेंगे। (सहअव्यय)
(3) सभी छात्र कमरे में घुसे। (सहअव्यय)
(4) गंगा हिमालय से निकलती है। (सहअव्यय)
(5) मेरी कार स्कूटर से टकरा गई। (सहअव्यय)

3) **सामान्य सकर्मक :** इस वर्ग के अंतर्गत ऐसे सभी वाक्य आते हैं जो अपने अर्थ की पूर्ति के लिए, अनिवार्य घटक के रूप में कर्म की आकांक्षा करते हैं। यह कर्म संज्ञा के रूप में भी हो सकता है, भावार्थक संज्ञा (इनफिनिटिव) के रूप में भी और उपवाक्य के रूप में भी, जैसे :

(1) सुरेश चाय पी रहा है। (संज्ञा कर्म)
(2) अध्यापक ने दो छात्रों को बुलाया। (संज्ञा कर्म)
(3) मैं कार चलाना जानता हूँ। (भावार्थक संज्ञा)
(4) हम सोच रहे हैं कि हम आज ही लौट जाएँ। (उपवाक्य के रूप में)

4) **सहअव्ययात्मक सकर्मक :** इस वर्ग के अंतर्गत ऐसे सभी वाक्य आते हैं जो अपने अर्थ की पूर्ति के लिए अनिवार्य घटक के रूप में कर्म के साथ-साथ एक सहअव्यय (क्रियाविशेषण) की भी आकांक्षा करते हैं, जैसे :

(1) मैं अपनी गाड़ी इस गैरेज में रखता हूँ। (सहअव्यय)
(2) पिताजी ने सभी पैसे बैंक में डाल दिए हैं। (सहअव्यय)
(3) उन्होंने सारी जिम्मेदारियाँ मुझ पर थोप दीं। (सहअव्यय)

5) **सहपात्रीय सकर्मक :** इस वर्ग के अंतर्गत ऐसे सभी वाक्य आते हैं जो अपने अर्थ की पूर्ति के लिए अनिवार्य घटक के रूप में कर्म के साथ-साथ एक अन्य सहपात्र की आकांक्षा करते हैं। द्विकर्मक, संप्रदान तथा कुछ प्रकार के अपादान कारक भी इसी वर्ग में शामिल हैं, जैसे :

(1) मैंने अपने मित्र को एक किताब दी। (सहपात्र, द्विकर्मक/संप्रदान)
(2) दुकानदार ने गुप्ताजी से पूरे पैसे ले लिए। (सहपात्र, अपादान)
(3) डॉक्टर ने मरीज़ से कहा कि वह कल आए। (सहपात्र, उपवाक्य के रूप में कर्म)
(4) डॉक्टर ने मरीज़ से कल आने को कहा। (सहपात्र, उपवाक्य का नामिकीकरण)

6) **कर्मपूरक :** इस वर्ग के अंतर्गत ऐसे सभी वाक्य आते हैं जो अपने अर्थ की पूर्ति के लिए अनिवार्य घटक के रूप में कर्म के साथ-साथा एक कर्मपूरक की आकांक्षा करते हैं। यह कर्मपूरक संज्ञा भी हो सकती है, विशेषण भी, जैसे :

(1) लोगों ने आपको अपना नेता चुना है। (संज्ञा पूरक)
(2) मैं शर्माजी को अपना बड़ा भाई मानता हूँ। (संज्ञा पूरक)
(3) हम आपको ईमानदार समझते थे। (विशेषण पूरक)

11.5 व्युत्पन्न वाक्य-साँचे

भाषावैज्ञानिक मानते हैं कि वास्तविक भाषा-व्यवहार में हम जितने भी प्रकार के छोटे-बड़े वाक्यों का प्रयोग करते हैं उन सबका स्रोत आधारभूत वाक्य ही हैं। भाषा के सभी वाक्य किसी न किसी रूप में इन्हीं आधारभूत वाक्य-साँचों से व्युत्पन्न होते हैं। हम कुछ विशेष भाषिक युक्तियों का इस्तेमाल कर कभी आधारभूत वाक्यों का विस्तार करते हैं, कभी उनमें नये अर्थ, शब्द, पदबंध और उपवाक्य जोड़ते हैं, कभी कुछ अंशों का रूपांतरण करते हैं और कुछ का लोप और सप्रकार हम अनंत वाक्यों का निर्माण कर सकते हैं।

आधारभूत वाक्यों से विभिन्न वाक्य व्युत्पन्न करने की चार प्रमुख प्रक्रियाएँ हैं :

11.5.1 पदबंधां के विस्तार द्वारा

किसी भी पदबंध में विशेषण या अन्य शब्द जोड़कर उसका विस्तार किया जा सकता है, जैसे :

(1) लड़का अध्यापक को ढूँढ़ रहा है।
(2) आपका लड़का अंग्रेज़ी के अध्यापक को ढूँढ रहा है।
(3) आपका छोटा वाला लड़का अंग्रेज़ी के नए अध्यापक को ढूँढ रहा है।

11.5.2 ऐच्छिक घटकों के योग द्वारा

आधारभूत वाक्यों में ऐच्छिक पदबंधों या घटकों को जोड़कर भी वाक्य का विस्तार किया जा सकता है। ये ऐच्छिक घटक सामान्यतः क्रियाविशेषण पदबंधों के रूप में होते हैं और इनका मुख्य प्रयोजन वाक्य में अतिरिक्त सूचना देना और वाक्य को संदर्भ से जोड़ना होता है। वाक्य-संरचना की दृष्टि से इन घटकों का विशेष महत्व नहीं होता, लेकिन सूचना संरचना की दृष्टि से ये अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं देखिएः

(1) रमेश अख़बार पढ़ रहा है।

(2) रमेश कुर्सी पर बैठे हुए अख़बार पढ़ रहा है।

(3) रमेश चार बजते से कुर्सी पर बैठे हुए अखबार पढ़ रहा है।

(4) रमेश बिना कुछ खाए-पिए चार बजे से कुर्सी पर बैठे हुए अखबार पढ़ रहा है।

11.5.3 लोप प्रक्रिया द्वारा

यदि दो या अधिक संरचक वाक्यों के बीच ऐसे समरूप अंश (पद या पदबंध) हों जो समान कोटि के हों और वाक्य में समान प्रकार्य करते हों तो दूसरे वाले समान अंश का लोप हो जाता है, जैसे :

(1) मैं आपको जानता हूँ। मैं आपके भाई को नहीं जानता हूँ।

(2) मैं आपको जानता हूँ आपके भाई को नहीं।

11.5.4 रूपांतरण प्रक्रिया द्वारा

रूपांतरण वैयाकरणों की यह धारणा है कि आधारभूत वाक्यों पर कुछ विशिष्ट नियम (जैसे, लोप नियम, स्थानांतरण नियम, आरोपण नियम आदि) लागू कर उनसे अनेक प्रकार के संदर्भ-संगत वाक्य बनाए जा सकते हैं जैसे - प्रश्नात्मक वाक्य, नकारात्मक वाक्य, सक-वाक्य, आज्ञार्थक वाक्य, संभावनार्थक वाक्य, कर्मवाच्य वाक्य। देखिए :

(1) रमेश अखबार पढ़ रहा है।
→ क्या रमेश अख़बार पढ़ रहा है? (प्रश्नात्मक रूपांतरण)

(2) दुकानदार ने गुप्ताजी से पूरे पैसे ले लिए।
→ दुकानदार ने गुप्ताजी से पूरे पैसे नहीं लिए (नकारात्मक रूपांतरण)

(3) दुकानदार ने गुप्ताजी से पूरे पैसे ले लिए।
→ दुकानदार गुप्ताजी से पूरे पैसे ले सकते हैं। (सक-रूपांतरण)

(4) भाईसाहब चाय पीते हैं।
→ भाईसाहब, चाय पीजिए। (आज्ञार्थक रूपांतरण)

(5) निदेशक ने आदेश ज़ारी कर दिए हैं।
→ आदेश ज़ारी किए जा चुके हैं। (कर्मवाच्य रूपांतरण)

(6) पिताजी कल लौट रहे हैं।
→ शायद पिताजी कल लौटें। (संभावनार्थक रूपांतरण)

11.6 सारांश

- वाक्य का विश्लेषण इन चार स्तरों पर किया जा सकता है - संरचना, प्रकार्य, लौकिक अर्थ और सूचना।
- संरचनापरक विश्लेषण से हमें संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण जैसी कोटियाँ प्राप्त होती हैं। प्रकार्यपरक विश्लेषण से हमें कर्ता, कर्म, पूरक जैसी कोटियाँ प्राप्त होती हैं।

- लौकिक विश्लेषण से हमें अभिकर्ता (एजेंट), अनुभावक, भोक्ता जैसी कोटियाँ प्राप्त होती हैं। सूचनापरक विश्लेषण से हमें ज्ञात सूचना तथा नई सूचना अथवा थीम, रीम जैसी कोटियाँ प्राप्त होती हैं।
- वाक्य विभिन्न पदबंधों से निर्मित एक मूर्त और निश्चित रचना है। वाक्य-साँचा इन पदबंधों की प्रकार्यात्मक कोटियों से निर्मित एक अमूर्त ढाँचा है।
- वाक्य में प्रयुक्त शब्दों की संख्या सीमित होती है, लेकिन वाक्य-साँचों के विभिन्न घटकों के स्थान पर प्रयुक्त हो सकने वाले संभावित शब्दों की संख्या असीमित हो सकती है।
- वाक्य-साँचे में प्रत्येक घटक के प्रयोग का एक निश्चित स्थान होता है जिसे प्रकार्य स्थान कहते हैं। प्रकार्य-स्थान यहाँ पदबंध स्तरीय होता है और एक पदबंध का प्रतिनिधित्व करता है।
- प्रत्येक वाक्य-साँचे की एक निश्चित वितरण व्यवस्था होती है और उसके विभिन्न घटक एक दूसरे से व्याकरणिक संबंधों के जरिए जुड़े रहते हैं जिसे वाक्य विन्यासात्मक संबंध कहते हैं।
- एक प्रकार्य-स्थान पर प्रयुकत हो सकने वाले शब्दों को शब्द-वर्ग कहते हैं। इनके बीच के संबंध को रूपावली संबंध कहते हैं।
- वाक्य-साँचों के घटक दो प्रकार के होते हैं – अनिवार्य घटक और ऐच्छिक घटक। अनिवार्य घटक को हटा देने से वाक्य व्याकरण और अर्थ की दृष्टि से भंग हो जाता है।
- ऐसे वाक्य जिनके सभी घटक अनिवार्य घटक हों आधारभूत वाक्य कहलाते हैं। आधारभूत वाक्यों के साँचे आधारभूत वाक्य-साँचे कहलाते हैं।
- आधारभूत वाक्यों के तीन प्रमुख वर्ग हैं - कोप्यूला वाक्य वर्ग, को-वाक्य वर्ग और क्रियाप्रधान वाक्य-वर्ग।
- कोप्यूला वाक्यों में कर्ता और पूरक योजक क्रिया के माध्यम से जुड़े होते हैं।
- को-वाक्यों द्वारा अभिव्यक्त भावों को कुछ विशिष्ट कोटियों में रखा जा सकता है - शारीरिक अनुभूति, बौद्धिक अनुभूति, मनोभाव, पसंद आदि।
- क्रियाप्रधान वाक्यों में क्रिया ही वाक्य का मुख्य नियंत्रक तत्व होता है। इनके छह प्रमुख भेद हैं - सामान्य अकर्मक, सहअव्ययात्मक अकर्मक, सामान्य सकर्मक, सहअव्ययात्मक अकर्मक, सहपात्रीय सकर्मक, कर्मपूरक।
- भाषा के सभी वाक्य किसी-न-किसी आधारभूत वाक्य से व्युत्पन्न होते हैं। व्युत्पन्न वाक्यों की रचना की चार प्रुख प्रक्रियाएँ हैं - पदबंध विस्तार, ऐच्छिक घटकों का योग, लोप प्रक्रिया और रूपांतरण प्रक्रिया।

11.7 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

(1) वाक्य विश्लेषण के स्तरों की व्याख्या कीजिए।

(2) आधारभूत वाक्य ओर व्युत्पन्न वाक्य की संकल्पना को सोदाहरण समझाइए।

2. टिप्पणी लिखिए

(1) हिंदी में कर्ता+को वाले वाक्य

(2) सकर्मक वाक्य के प्रकार

(3) आधारभूत वाक्यों से विभिन्न व्युत्पन्न वाक्य प्राप्त करने की प्रक्रियाएँ

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

अभ्यास-1

(क) नीचे दिए कुछ कथन सही हैं और कुछ गलत। सही कथनों के आगे (✓) तथा गलत कथन के आगे (×) का निशान लगाएँ :

i) लौकिक जगत की कोटियाँ वास्तविक जगत में उनकी भूमिकाओं के आधार पर निर्धारित होती हैं। (सही/गलत)

ii) वाक्य के प्रारंभ में जो भी घटक होता है उसे 'रीम' कहते हैं। (सही/गलत)

iii) वाक्य-साँचा विभिन्न पदबंधों से निर्मित एक मूर्त और निश्चित रचना है। (सही/गलत)

iv) वाक्य-साँचे के निर्धारण में पदबंध से नीचे किसी अन्य कोटि को नहीं लिया जाता। (सही/गलत)

v) क्रिया विशेषण हमेशा ऐच्छिक घटक के रूप में ही प्रयुक्त होते हैं। (सही/गलत)

(ख) कोष्ठक में दिए गए उत्तरों में से कोई एक उत्तर सही है। जो सही उत्तर हो उसे रिक्त स्थान में लिखिए।

i) लोक-व्यवहार में वाक्य का अंतिम लक्ष्य .... संप्रेषण है। (संदेश/अर्थ/मनोभाव)

ii) वाक्य में कर्ता, कर्म, पूरक .... कोटियाँ कहलाती हैं। (संरचनात्मक/प्रकार्यात्मक/लौकिक)

iii) 'मैं अभी तक आपको डॉक्टर समझता था' वाक्य में .... वाक्य का कर्म है। (मैं/डॉक्टर/आपको)

iv) 'यह पत्र मैंने नहीं लिखा' वाक्य में .... 'थीम' है। (यह पत्र/मैंने नहीं लिखा/नहीं लिखा)

v) वाक्य-साँचें में प्रत्येक घटक के प्रयोग की एक निश्चित जगह होती है जिसे .... कहते हैं। (विन्यास-स्थान/रेखीय-स्थान/प्रकार्य-स्थान)

(ग) सही विकल्प पर ✓ का निशान लगाएँ :

i) 'मुझे आपसे सहानुभूति है' - इस वाक्य में
- क) 'मुझे' अनुभवकर्ता है। ( )
- ख) 'आपसे' अनुभवकर्ता है। ( )
- ग) 'मुझे' सक्रिय कर्ता है। ( )

ii) सूचना संरचना के अनुसार 'मेरे भाई को तीन दिन से बुखार है' इस वाक्य में :
- क) 'तीन दिन से बुखार है' नई सूचना है। ( )
- ख) 'मेरे भाई को' नई सूचना है। ( )
- ग) दोनों गलत हैं। ( )

iii) एक ही प्रकार्य-स्थान में प्रयुक्त हो सकने वाले शब्दों को :
- क) शब्दावली कहते हैं। ( )
- ख) व्याकरणिक शब्द कहते हैं। ( )
- ग) शब्द-वर्ग कहते हैं। ( )

iv) 'मेरा लड़का/तीन दिन से/होटल में/खाना/खा रहा है' - इस वाक्य में पाँच पदबंधों के बीच का संबंध,
- क) रूपावली संबंध है। ( )

ख) वाक्य-विन्यासात्मक संबंध है। ( )

ग) जाति-सदस्य संबंध है। ( )

v) "मैं थोड़ी देर सोना चाहता हूँ - यह वाक्य,

क) सहअव्ययात्मक सकर्मक वाक्य है। ( )

ख) सहपात्रीय सकर्मक वाक्य है। ( )

ग) सामान्य सकर्मक वाक्य है। ( )

अभ्यास-2

(क) नीचे दिए कुछ कथन सही हैं और कुछ गलत। सही कथनों के आगे (✓) तथा गलत कथन के आगे (×) का निशान लगाएँ :

i) ऐसे वाक्य जिनके सभी घटक ऐच्छिक हों आधारभूत वाक्य कहलाते हैं। (सही/गलत)

ii) भाषा में आधारभूत वाक्यों की संख्या असीमित होती है। (सही/गलत)

iii) को-कर्ता सामान्यतः चेतन होता है। (सही/गलत)

iv) को-वाक्य की रचना केवल हिंदी भाषा की अपनी विशिष्टता है जो अन्य भारतीय भाषाओं में नहीं मिलती। (सही/गलत)

v) सहअव्यय हमेशा अनिवार्य घटक के रूप में ही प्रयुक्त होता है। (सही/गलत)

(ख) कोष्ठक में दिए गए उत्तरों में से कोई एक उत्तर सही है। जो सही उत्तर हो उसे रिक्त स्थान में लिखिए।

i) आधारभूत वाक्य-साँचों में हमेशा .... वाक्यों को ही रखा जाता है। (संयुक्त/मिश्र/सरल)

ii) .... में कर्ता और पूरक योजक क्रिया के माध्यम से जुड़े होते हैं। (को-वाक्य/कोप्यूला वाक्य/क्रियाप्रधान वाक्य)

iii) 'मुझे बुखार है' .... है। (को-वाक्य/कोप्यूला वाक्य/क्रियाप्रधान वाक्य)

iv) .... में केवल क्रिया ही वाक्य का मुख्य नियंत्रक तत्व होता है। (को-वाक्य/कोप्यूला वाक्य/क्रियाप्रधान वाक्य)

v) .... सामान्यतः क्रियाविशेषण होते हैं। (सहपात्र/सहअव्यय/को-कर्ता)

(ग) सही विकल्प पर ✓ का निशान लगाएँ :

i) 'मुझे वह लड़का निर्दोष लगता है' वाक्य में 'निर्दोष' :

क) कर्म है

ख) कर्मपूरक है

ग) कर्तापूरक है

ii) 'तभी एक आदमी ने दुकानदार के पेट में छूरा भोंक दिया' वाक्य में 'पेट में' :

क) सहपात्र है

ख) सहअव्यय है

ग) कर्म है

iii) सरला हमेशा अपनी पड़ोसन से झगड़ती रहती हैं' वाक्य में 'पड़ोसन' :

क) कर्म है

ख) सहअव्यय है

ग) सहपात्र है

iv) 'उन्होंने कहा कि वे आज कार्यालय नहीं आएँगे' वाक्य में कर्म है :

क) कार्यालय

ख) वे

ग) आज वे कार्यालय नहीं आएँगे

v) 'उन्हें हिंदी नहीं आती' वाक्य

क) को-वाक्य है।

ख) क्रियाप्रधान वाक्य है।

ग) कोप्यूला वाक्य है।

उत्तर

अभ्यास-1

(क) i) सही

ii) गलत

iii) गलत

iv) सही

v) गलत

(ख) i) संदेश

ii) प्रकार्यात्मक

iii) आपको

iv) यह पत्र

v) प्रकार्यप्रधान

(ग) i) क

ii) क

iii) ग

iv) ख

v) ग

अभ्यास-2

(क) i) गलत

ii) गलत

iii) सही

iv) गलत

v) सही

(ख i) सरल

ii) कोप्यूला वाक्य

iii) को-वाक्य

iv) क्रियाप्रधान वाक्य

v) सहअव्यय

(ग) i) ख

ii) ख

iii) ग

iv) ग

v) क

इकाई 12 अर्थ-संरचना

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 अर्थ की प्रकृति
- 12.2.1 नाम और रूप
- 12.2.2 अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया
- 12.2.3 आर्थी घटक तथा विश्लेषण
- 12.2.4 आर्थी क्षेत्र
- 12.2.5 आर्थी संबंध

12.3 पर्यायता
- 12.3.1 पर्याय का आविर्भाव
- 12.3.2 पर्यायता का अर्थविभेदन

12.4 अनेकार्थता
- 12.4.1 शब्दस्तरीय अनेकार्थता
- 12.4.2 शब्द संयोग स्तर पर अनेकार्थता
- 12.4.3 अनेकार्थता की स्थिति में अर्थ विनिश्चय

12.5 विलोमता
- 12.5.1 ध्रुवीय
- 12.5.2 क्रमिकीय
- 12.5.3 संबंधी
- 12.5.4 अनुवर्ती
- 12.5.5 मापक्रमीय

12.6 वाक्य-स्तर पर अर्थ विवेचन
- 12.6.1 वाक्यार्थ बोध प्रक्रिया
- 12.6.2 अनेकार्थता
- 12.6.3 पर्यायता
- 12.6.4 विलोमता

12.7 सारांश
12.8 अभ्यास

12.0 उद्देश्य

जिस प्रकार वाक्य संरचना में पदबंध उपवाक्यों, वाक्य आदि घटकों से निर्मित वाक्यों के प्रकारों की चर्चा करते हैं उसी प्रकार भाषा की अर्थ संरचना भी होती है जिसमें हम शब्द और अर्थ के विभिन्न संदर्भों की चर्चा करते हैं।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- अर्थ की प्रकृति समझा सकेंगे,
- भाषा की अर्थ संरचना के घटक बता सकेंगे,
- शब्द और अर्थ का संबंध समझा सकेंगे,
- अनेकार्थता, पर्याय, विलोम आदि की प्रकृति स्पष्ट कर सकेंगे, और
- भाषा में शब्द प्रयोग की विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

संस्कृति तथा सभ्यता के जिस उच्च सोपान पर आज हम स्थित हैं उसके लिए मानव प्रमुखतया भाषा प्रतीकों का ऋणी है जो उसे मनन-चिंतन-निदिध्यासन का सामर्थ्य प्रदान

करते हैं। सिंह यदि कभी मृग को सोचता होगा(?) तो उसके मनोपटल पर 'मृग' का सजीव स्वरूप उभर आता हागा पर आपको कोई सिंह-मृग की कहानी सुनानी हो तो धाराप्रवाह में चित्र के स्थान पर भाषा प्रतीक उभर आएँगे। भाषा प्रतीक ही हमारे स्मृति भंडार में भरे रहते हैं। इस पाठ में भाषा प्रतीक और वास्तविक जगत् की सत्ता (इन्टिटी) के अंतःसंबंध 'अर्थ' की संरचना स्पष्ट की जा रही है। अर्थ की प्रकृति के बाद हिंदी में विद्यमान पर्यायता, अनेकार्थता, विलोमता पर प्रकाश डाला जा रहा है और अंत में वाक्य स्तर पर इनकी भूमिका स्पष्ट की जा रही है।

12.2 अर्थ की प्रकृति

'अर्थ' शब्द का सही-सही क्या 'अर्थ' है - यह भाषा दार्शनिकों के लिए एक अति कठिन समस्या है। इस समस्या की एक विलक्षणता यह भी है कि जहाँ एक ओर भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से की परिभाषा में कही-न-कहीं से 'अतिव्याप्ति' या 'न्यूनव्याप्ति' का दोष आ जाता है, वहीं दूसरी ओर साधारण व्यक्ति भी बचपन से ही 'अर्थ' की संकल्पना से भलीभाँति परिचित है और बेझिझक 'अर्थ' शब्द का व्यावहारिक दृष्टि से सही प्रयोग करता रहता है। बच्चे प्रायः किसी वस्तु। प्राणी की ओर इशारा कर यह पूछते हैं कि 'यह क्या है?' अर्थात् 'इसे क्या कहते हैं' या 'इसे मैं क्या कहूँ' या 'मैं इसे किस नाम से पुकारूँ' आदि। वे बड़ों के कथन को सुनकर कभी-कभी यह पूछ बैठते हैं कि अभी आपने यह (=×) कहा है, 'यह क्या है?' अर्थात् 'इसका क्या मतलब है' या 'इसका चित्र दिखाइए' आदि। विद्यालय में जाकर बालक को अध्यापक से निरंतर सुनने को मिलता है कि इस 'शब्द' का यह 'अर्थ' होता है या 'वृक्ष' का अर्थ है 'पेड़', 'सरिता' का अर्थ है 'नदी' या 'lion' का अर्थ है 'शेर' आदि। इस प्रकार बाल्यावस्था में ही व्यक्ति 'अर्थ' शब्द के विविध अर्थों से परिचित हो जाता है।

12.2.1 'नाम' और 'रूप'

अर्थ की संकल्पना को स्पष्ट करने के पूर्व यदि भारतीय चिंतन में प्रयुक्त दो शब्द 'नाम' और 'रूप' को समझ लिया जाए तो अर्थ के अर्थबोधन में सहायता मिलेगी। संसार में मनुष्य असंख्य वस्तुओं, प्राणियों व्यक्तियों, यन्त्र-उपकरणों आदि को देखता है। इनकी अपनी-अपनी सत्ता होती है जिसके कारण वे अन्य से भिन्न होते हैं और अन्य के बीच में पहचाने जाते हैं। इस मूर्त सत्ता के लिए तकनीकी शब्द 'रूप' का प्रयोग है। सृष्टि में जितनी सत्ताएँ हैं वे स्रष्टा के रूप हैं, शायद इसीलिए 'रूप' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार रूप इन्द्रियगोचर सांसारिक मूर्त सत्ता है। किंतु समाज में प्रत्येक भाषा समुदाय इन मूर्त सत्ता-रूपों को किसी-न-किसी नाम से पुकारते या जानते हैं। हिंदी भाषी 'गाय-रूप' के लिए 'गाय नाम' का प्रयोग करते हैं, घोड़ा प्राणी रूप के लिए 'घोड़ा' - 'नाम' का व्यवहार करते हैं,आदि। इस प्रकार बालक अपने बड़ों को 'रूप', के लिए 'नाम$_1$', 'रूप$_2$' के लिए 'नाम$_2$', 'रूप$_3$' के लिए 'नाम$_3$' आदि अनंत 'रूप' एवं 'नाम' को देखता-सुनता है। वह यह भी देखता है कि 'नाम', सुनते ही 'रूप', का प्रयोग हो रहा है, 'नाम$_2$' के सुनते ही 'रूप$_2$', 'नाम$_3$' के सुनते ही 'रूप$_3$' आदि का जनव्यवहार होता है। ऐसे निरंतर साहचर्य-बोध से बालक यह परिणाम निकाल लेता है कि 'नाम' और 'रूप' के बीच कोई संबंध है - इस बुद्धि स्थित संबंध को मोटे तौर से 'अर्थ' कहते हैं।

अब इस स्थिति पर ध्यान दीजिए। बच्चा स्कूल जाने के पहले नाश्ता कर रहा है और दूध पीते ही कहता है, 'माँ! चीनी'। 'चीनी' ध्वनियाँ सुनते ही माँ 'चीनी' पदार्थ को उसकी ओर बढ़ा देती है। यहाँ स्वाभाविक लगता है कि 'चीनी' शब्द-ध्वनि और 'चीनी' पदार्थ में कोई सीधा प्रत्यक्ष संबंध है :

(चीनी) ⟵——————⟶ "चीनी"
शब्द का उच्चारण   वस्तु
नाम   रूप

अर्थात् 'चीनी-नाम' सुनते ही 'चीनी-रूप' का ध्यान आता है और विपरीततः 'चीनी-रूप' देखते ही 'चीनी-नाम' स्मृति में आता है। संस्कृत दर्शन के अनुसार प्रत्येक में एक 'कारण' है और दूसरा 'कार्य' - 'चीनी-नाम' का श्रवण 'कारण' है, 'चीनी-वस्तु' का बोध 'कार्य' तथा विपरीततया 'चीनी-वस्तु' का दर्शन 'कारण' है और 'चीनी-शब्द' का स्मृति-प्रत्यक्ष 'कार्य' है। और कारण-कार्य के बीच कुछ-न-कुछ समय अवश्य लगता है और कोई-न-कोई प्रक्रम-प्रक्रिया अवश्यमेव होती है (संस्कृत दर्शन में इस प्रक्रम या प्रक्रिया को 'व्यापार' कहते हैं)। यहाँ 'नाम' (वाचक) और 'रूप' (वाच्य) के बीच जो व्यापार होता है वह 'अर्थ' – व्यापार है अर्थात् वाचक-वाच्य संबंध का नाम 'अर्थ' है। दूसरे शब्दों में 'अर्थ' नाम और रूप के बीच का वह संबंध है जो नाम के सुनते ही रूप को देखता है और रूप को देखते ही नाम बोलता है।

यह एक बहुत सरलीकृत व्याख्या है। यथार्थ स्थिति जानने के लिए कुछ और गंभीरता से विवेचन आवश्यक है और इसके लिए निम्नलिखित कुछ विचार-बिंदुओं पर प्रकाश डाला जा रहा है :

(i) **ध्वन्यात्मक शब्द और भाषाई शब्द** : भारतीय भाषा चिंतन के अनुसार भौतिक ध्वनियों के दो वर्ग हैं : 'ध्वन्यातमक' और 'वर्णात्मक' - ध्वन्यातमक जैसे कोई हार्न बजाए, वर्णात्मक जो भाषा का भाषाई अवयव है। (श्रोत ग्राह्यों गुणः शब्दः। स द्विविधो ध्वन्यात्मको वर्णात्मकश्च/ तत्र ध्वन्यात्मको भेर्यादौ। वर्णात्मकः संस्कृत भाषादि रूपः) (तर्क संग्रह, पृष्ठ 52)। बच्चे ने जब 'चीनी' ध्वनि निकाली तो वह ध्वन्यात्मक थी, माँ ने अपने भाषाई संस्कार से उसे हिंदी भाषा का एक 'शब्द' माना। (भाषाई संस्कार एक महत्वपूर्ण शर्त है - 'गो' ध्वनिसमूह को अंग्रेजी भाषा 'go' मानेगा और संस्कृत भाषी गो (= 'धेनु')। श्रोता सामान्यतया वाक्य ही सुनता है, संधि विच्छेद द्वारा 'पद' स्तर पर पहुँचता है, तत्पश्चात् तिङ्.सुप् आदि पृथक् करने के बाद प्रातिपदिक आदि (शब्द) पर और वह 'वर्णात्मक ध्वनि' है। इस प्रकार :

ना'   वर्णात्मक हिंदी भाषा का 'चीनी'-नाम/शब्द (अमूर्त)
↑
ना   ध्वन्यात्मक 'चीनी'-नाम (मूर्त)

(ii) व्यक्ति (व्यष्टि) - जाति : बच्चा बाह्य जगत् में जो कुछ भी देखता है वह मूर्त, इंद्रियगोचर और विशेष (व्यक्ति, व्यष्टि) होता है, किंतु वह शीघ्र ही 'जाति' की संकल्पना से भलीभाँति परिचित हो जाता है। छोटे बच्चे को एक लाल खिलौना दिया जाता है और कहा जाता है 'खिलौना लो', फिर एक पीला वैसा ही खिलौना दिया जाता है और कहा जाता है कि 'खिलौना लो'। वस्तु का रंग, आकार, आकृति आदि बदलती जाती है किंतु वह सुनता है 'खिलौना लो'। इस प्रकार उसके मन में खिलौने का अमूर्त रूप बैठ जाता है और वह खिलौना - 'जाति' का अनुभव कर लेता है। जहाँ 'व्यक्ति' मूर्त है, 'जाति' अमूर्त है। इस प्रकार 'नाम' से संबद्ध अनेक व्यष्टि रूप$_1$, व्यष्टि रूप$_2$, व्यष्टि रूप$_3$.. से 'जाति रूप' का अनुभव हो जाता है।

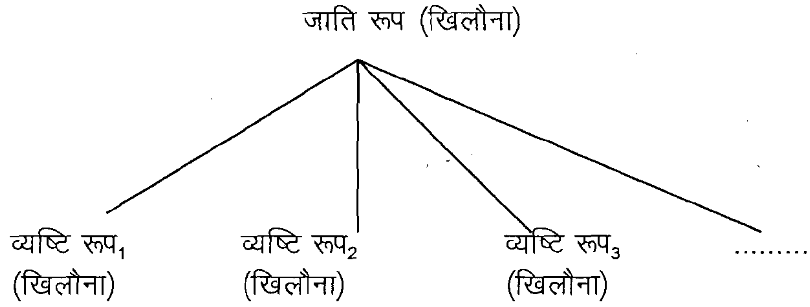

यह विशेष-सामान्य अथवा व्यक्ति-जाति संबंध प्राणियों तथा वस्तुओं (संज्ञा शब्दों) में बहुत स्पष्ट है, किंतु यह संबंध गुणों (विशेषण के विशेषकों) तथा क्रियाओं (क्रिया प्रक्रमों, क्रिया प्रक्रियाओं, क्रिया व्यापारों, क्रिया स्थितियों, घटनाओं आदि) में भी मिलता है।
अब 'अर्थ' की संकल्पना के विवेचन की ओर लौटें। नीचे के चित्र/आरेख पर ध्यान दें :

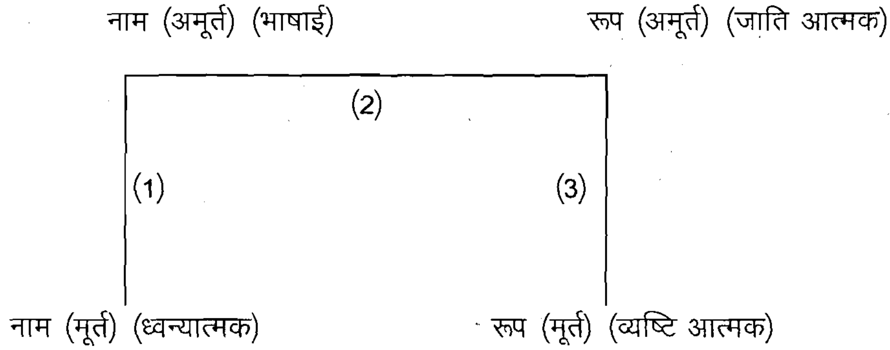

यह आरेख नैयायिकों के अनुसार 'शब्द बोध' की प्रक्रिया को दिखा रहा है। (1) चरण में हम ध्वन्यातमक नाम से भाषाई नाम तक पहुँचते हैं (पदज्ञान), (2) चरण में अमूर्त नाम से अमूर्तरूप तक पहुँचते हैं, यह व्यापार 'अर्थ-व्यापार' है जिसे तकनीकी न्याय शब्दावली में 'शक्तिमान' कहते हैं। इसी चरण पर वाचक-वाच्य संबंध को 'अर्थ' कहते हैं। (3) चरण में जो अमूर्त रूप वाच्य का चरण-दो से प्राप्त हुआ है उससे बाह्य जगत् में स्थित मूर्त-प्रत्यक्ष वाच्य तक पहुँचते हैं (पदार्थ ज्ञान)। इस प्रकार'अर्थ', अमूर्त नाम और अमूर्त रूप के बीच का संबंध है जिसके कारण हम नाम से रूप की ओर अथवा रूप से नाम की ओर चलते हैं।

12.2.2 अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया

बच्चा अर्थग्रहण कैसे करता है, इसका अध्ययन भारतीय भाषा-चिंतन में गहराई से हुआ है और अर्थग्रहण की प्रक्रिया को 'शक्ति ग्रह' के नाम से कहा गया है। इसके आठ साधन माने गए हैं :

शक्ति ग्रहं व्याकरणोपमान कोशाप्त वाक्याद् व्यवहारतश्च।
वाक्यस्य शेषद् विवृत्ते र्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्ध पदस्य वृद्धाः।।
(न्यायसिद्धांत मुक्तावली - शब्दखंड -   )

इनका विवेचन यहाँ निम्न क्रम से किया जा रहा है :

(1) **वृद्ध व्यवहार/लोक व्यवहार :** छोटा बच्चा बड़ों से अथवा भाषा विशेष न समझने वाला व्यक्ति उस भाषा को बोलने वाले लोगों से अनेक प्रकार के वाक्य सुनता है और तदनुसार उनकी क्रियाओं को देखता है और तब शब्दों के अर्थों का ज्ञान होता है। शक्तिग्रह के उपायों में यह प्रमुखतम है। 'अश्वं नय', 'गां नय', 'अश्वम् आनय', 'गाम् आनय' वृद्धजन व्यवहार के प्रसिद्ध उदाहरण हैं। जनसाधारण जीवन भर इसी साधन से अपनी शब्दावली बढ़ाता चलता है।

(2) **कोश :** शब्दकोश तो मुख्यतया शब्दों के अर्थ/अर्थों को बताने तथा समझाने के लिए बनाए ही जाते हैं। यदि पढ़ते समय पाठक के सामने कोई ऐसा शब्द आ जाता है, जिससे वह परिचित नहीं है तो सर्वप्रथम वह शब्दकोश निकाल कर अर्थ देखेगा। शिक्षार्थियों को विद्यालयों में निरंतर इस दिशा में प्रोत्साहित किया जाता है।

(3) **व्याकरण :** शब्दों के अर्थ का ज्ञान व्याकरण से शीघ्र और सही-सही हो जाता है। संस्कृत जैसी भाषाओं में जहाँ प्रचुर मात्रा में यौगिक शब्द हैं, समास-प्रत्यय-उपसर्ग-संधि की जानकारी अर्थ निकालने में बड़ी सहायता देती हैं। जैसे - पठ् (पढ़ना) +0 कुल (=अ क) (क्रिया करने वाला) = पढ़ने वाला।

(4) **आप्त-वाक्य :** 'आप्त' उस व्यक्ति को कहते हैं जिसे सँबद्ध विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है और जो अपने विषय का विशेषज्ञ होता है। शास्त्रों में आए शब्दों के मानक एवं प्रामाणिक परिभाषा आधारित अर्थ जानने का यह प्रमुख स्रोत है। कक्षा में अध्यापक द्वारा बताए और अन्यत्र बड़ों द्वारा बताए अर्थों को बालक इसी साधन द्वारा ग्रहण करता है।

(5) उपमान : कभी-कभी बड़ों के लिए अर्थ बताना कठिन होता है क्योंकि वह प्राणी या वस्तु पूछने वाले को प्रत्यक्ष अथवा चित्रादि के माध्यम से उपलब्ध नहीं है। ऐसी स्थिति में बताने वाला उस सत्ता से समीपतम परिचित वस्तु का उल्लेख करते हुए कहता है कि इसके समान होता है।

(6) विवृत्ति : विवृत्ति का अर्थ विवरण देना अर्थात् व्याख्या देना है। संस्कृत में भाष्य, टीका आदि का बहुत प्रचलन था। साहित्यिक कृतियों पर भी टीकाएँ मिलती थीं, जिनसे अभिधा से अतिरिक्त व्यंजना, तात्पर्या आदि को स्पष्ट किया जाता है, साहित्यिक विशेषताओं को उद्घाटित किया जाता है और कथ्य के ज्ञानमींमासा-परक पक्षों पर प्रकाश डाला जाता है। विवृत्ति द्वारा शब्द के अर्थ के विविध पक्षों को उदाहरण, भेद-उपभेद आदि द्वारा सम्यक् रूप से समझाया जाता है।

(7) सिद्ध पद सान्निध्य : यह वाक्यगत साधन है। वाक्य में अनेक शब्दों में से यदि केवल दो-एक शब्दों का अर्थ नहीं आता है तो ज्ञात (सिद्ध) पदों के सामीप्य से उनका अर्थ निकाला जा सकता है। जैसे 'इस आम के पेड़ पर पिक मधुरस्वर से गान कर रही है' वाक्य में 'पिक' शब्द का अर्थ नहीं ज्ञात है, किंतु सांसारिक जानकारी से मालूम है कि आम के पेड़ पर वसंत में कोयल ही कूकती है, अतएव 'पिक' शब्द का अर्थ 'कोयल' ज्ञात हो गया।

(8) वाक्य शेष : वाक्यशेष का अर्थ है 'बचा हुआ अथवा बचे हुए वाक्य'। किसी वाक्य का अर्थ यदि किसी अन्य वाक्य के अर्थ पर आधारित है तो वह वाक्य शेष है। जहाँ सिद्ध पदसान्निध्य वाक्य स्तरीय था, यह प्रोक्तिस्तरीय है। जैसे "अभी-अभी क्लिन्टन चीन गए थे। यह कदाचित् पहला अवसर था कि अमेरिका का राष्ट्रपति चीन जाए।" यहाँ क्लिन्टन अमेरिका के राष्ट्रपति हैं यह जानकारी वाक्य शेष से मिल जाती है।

12.2.3 आर्थी घटक और उनका विश्लेषण

ध्वनियों के घटकों का जिस प्रकार निर्धारण होता है और उनका विश्लेषण होता है उसी प्रकार शब्दार्थ के घटकों का निर्धारण-विश्लेषण क्यों न किया जाए यह विचार पाश्चात्य भाषा चिंतकों का बहुत दिनों से था। यह कठिन कार्य अवश्य था क्योंकि ध्वनियों के विवेचन-विश्लेषण को पहले तो भारतीय ध्वनिशास्त्रियों के वर्गीकारक विवेचन ने तथा बाद में भौतिकशास्त्र में ध्वानिकी पर हुए विविध अध्ययनों ने जो सहायता पहुँचाई थी उस प्रकार की

सहायता शब्दार्थ विज्ञान को नहीं मिल रही थी। फिर भी विश्व की ज्ञानमीमांसा के, मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय अनुसंधान निष्कर्षों ने और भारतीय न्याय एवं मीमांसा की वैचारिक उपलब्धियों ने इस दिशा में बहुत योगदान किया है।

अतएव यह माना जाने लगा कि जिस प्रकार भाषा ध्वनि अनेक ध्वनितत्वों के संयोजन से बनती है (उदाहरणार्थ 'प' ध्वनि में अनेक ध्वनितत्व जैसे व्यंजन-स्पर्श-द्व्योष्ठ्य-अघोष-अल्पप्राण-निरनुनासिक आदि हैं) उसी प्रकार प्रत्येक शब्द का अर्थ अनेकानेक अर्थतत्वों के संयोजन से बनता है। 'बालक-बालिका' में केवल लिंग घटक (पुल्लिंग-स्त्रीलिंग) का अंतर है, 'कटोरा-कटोरी' में बृहत्-लघु-भाव का अंतर है, 'दौड़ना' वह चलना है जिसमें बहुत तेज वेग है और 'भागना' वह दौड़ना है जिस अनिष्टता की आशंका से दूर हटना (पलायन) है, 'छीनना' वह लेना है जिसमें आदाता बल प्रयोग कर रहा है जबकि दाता की देने में अनिच्छा है। संक्षेप में प्रत्येक अर्थ में अनेकानेक 'अर्थतत्व' संपुटित (encapsulated) हैं।

घटकीय विश्लेषण में द्वि-आधारी पद्धति (binary system) की भाँति (+) (-) का प्रयोग एक के बाद एक होता जाता है। संसार की सत्ताएँ '+चेतन' या '-चेतन' हैं, +चेतन में '+जन्तु' है, '+जन्तु' में '+मानव' और '-मानव' है, '+मानव' के कई आयामों में '+पुं', '-पुं' है और आयु-अवस्था के कई लक्षण हैं। इस प्रकार :

बच्चा = '+चेतन', '–जन्तु' '+मानव' '+पुं' + प्रथम बालावस्था
बछड़ा = '+चेतन', '+जन्तु' '+गौ' '+पुं' '+बालावस्था'

12.2.4 आर्थी-क्षेत्र

आजकल प्रवेश परीक्षाओं अथवा प्रतियोगिता परीक्षाओं में तार्किक चिंतन योग्यता के परीक्षण हेतु odd man out (बेमेल हटाइए) अथवा समानानुपातिक वस्तुनिष्ठ प्रश्न आते हैं, जेसे, बेमेल सदस्य बताइए :

(क)	चिड़िया, गाय, मछली, पेड़	(पेड़)
(ख)	केला, जलेबी, आम, अमरूद	(जलेबी)
(ग)	गाय, शेर, साँप, आदमी	(साँप)

यह इस बात का संकेत देता है कि व्यक्ति तार्किक चिंतन में आर्थी-लक्षणों (घटकों) को ध्यान में रखते हुए सत्ताओं के वर्ग, उपवर्ग आदि समूहन करता रहता है। समावेशिता (inclusiveness) के उत्तराधर क्रम निरंतर बनते रहते हैं और प्रत्येक शाखा जो आगे छोटी शाखाओं में बँट रही है आर्थी क्षेत्र, आर्थी उपक्षेत्र आदि का निर्माण करते हैं। उदाहरणार्थ :

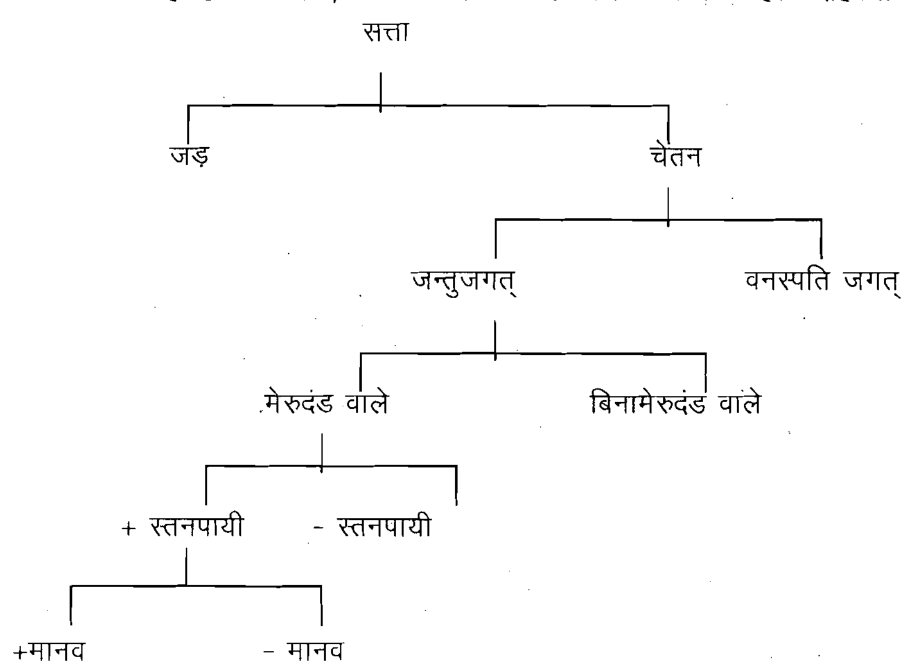

इस उत्तराधरक्रम विभाजन में जन्तुजगत् एक आर्थी क्षेत्र बना, वनस्पति जगत् दूसरा आर्थी क्षेत्र, मानव एक आर्थी उपक्षेत्र बना, पशु पक्षी आदि अन्य आर्थी उपक्षेत्र, आदि आदि।

ये आर्थी क्षेत्र शब्दावली वर्गीकरण, थेसारस (अर्थ कोश) बनाने में भाषाशिक्षण के क्षेत्र में बहुत उपयोगी होते हैं। हिंदी में इन आर्थी क्षेत्रों के कोटिकरण की दिशा में कोई विशेष अध्ययन नहीं हुआ है। हिंदी के समान्तर कोश (थेसारस) में कोटिकरण का एक प्रयास किया गया है। अंग्रेज़ी थेसारसों ने सौ साल से अधिक पुराने Rogets Thesaurus को ही मुख्य आधार बनाया है। नीचे प्राचीन दर्शनों में प्राप्त कोटिकरण तथा आधुनिक पाश्चात्य ज्ञानमींमासा आधारित कोटिकरण को ध्यान में रखते हुए एक कोटिकरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

110 ब्रह्म, ईश्वर
120 प्रकृति : 121 आकाश, 122 पृथ्वी, 123 जल, 124 वायु, 125 अग्नि, तेजस्
210 वनस्पति जगत् : 211 वृक्ष, 212 पुष्प, 213 फल
220 जन्तुजगत् : 221 पाशु, 222 पक्षी, 223 कीट, 224 सरीसृप, 225 जलचर
230 मानव
331 जीवन-अवस्थाएँ : 332 शरीरांग, 333 शारीरिक क्रियाएँ, 334 रोग एवं निवारण, 335 मन और मनोभावनाएँ आदि, 336 मनोविकार एवं उनके निवारणोपाय
410 आहार : उपादान-साधन-प्रक्रियाएँ-उत्पाद
420 आवास : भवन, फर्नीचर, प्रकाश, वायु, स्वच्छता
430 आच्छादन : वस्त्र, आभूषण-रत्न, श्रृंगार-प्रसाधन
440 आमोद-प्रमोद : उत्सव, समारोह, सम्मेलन
450 कला-शिल्प : ललित कलाएँ-उपयोगी कलाएँ-शिल्प
460 विनिर्माण : यंत्र, उपकरण, साधन आदि, उपादान-साधन-प्रक्रिया-उत्पाद
510 परिवार-कुटुंब-गोत्र
520 इष्ट मित्र : समुदाय
530 सामाजिक संबंध एवं क्रियाएँ (आज्ञा, निवेदन आदि)
610 शिक्षण-प्रशिक्षण : स्थलनाम, साधन, विषय
620 चिन्तन : गणना एवं मापन - काल, स्थान, दिशा, वर्गीकरण-कोटिकरण
630 धार्मिक क्षेत्र : स्थलनाम, ग्रंथ, कृत्य, गुरू, मान्यताएँ, देवादि
640 आजीविका : वाणिज्य व्यापार - स्थल-प्रक्रिया-साधन-मुद्रा आदि
650 आजीविका : अन्य - धंधे
710 यातायात : यात्रा साधन, यात्रामार्ग आदि
720 संदेश प्रेषण : पत्रवाहक, डाक
730 संदेश प्रेषण : यांत्रिक साधन - टेलीफोन, टी.वी.-रेडियो, इन्टरनेट
810 रक्षा-सुरक्षा : सेना-पुलिस, अस्त्रशस्त्र, सैन्यव्यवस्था
820 राज्य : शासन व्यवस्था, विधायी, राजनैतिक
830 प्रशासन : देश-प्रांत आदि, अधिकारी, प्रशासनतंत्र
840 विधि : विधि ग्रंथ, न्याय व्यवस्था, दंड, कारागार आदि

12.2.5 आर्थी संबंध

इन आर्थी क्षेत्रों के अंतर्गत जो शब्द/शब्द समूह आते हैं उनमें विशिष्ट आंतरिक संबंध अवश्य होता है। जैसे, 'फूल' शब्द और 'कमल, गुलाब, गेंदा' आदि शब्दों में यह आर्थी संबंध है कि 'फूल' वर्ग नाम है और 'कमल, गुलाब, गेंदा आदि' सदस्य नाम हैं, तथा 'कमल, गुलाब, गेंदा ' शब्दों में पारस्परिक संबंध 'सह-वर्गी' होना है। इसी प्रकार 'देश', 'प्रांत', 'कमिश्नरी', 'जिला', 'तहसील', 'परगना' आदि में उत्तराधर-समावेशी संबंध है - देश कई प्रांतों में बँटा रहता है, प्रांत कई कमिश्नरियों में, कमिश्नरी कई जिलों में आदि। भाषाविज्ञान में संरचना में भी उत्तराधर क्रम मिलता है - प्रोक्ति, वाक्य, उपवाक्य, पदबंध, पद, शब्द, शब्दांश, रूपिम व्याकरणिक उत्तराधरक्रम है। इसी प्रकार अंगांगी-संबंध भी होता है। शरीर के कई अंग हैं -

शीर्ष-वक्ष-उदर-हस्त पाद आदि। यदि 'भुजा' को अंगी मानें तो 'बाहु' और 'अंगुलियाँ' दो प्रमुख अंग हैं। इनमें प्रवरता (ज्येष्ठता) - अवरता (कनिष्ठता) भाव नहीं रहता है - अंगी बिना अंग के रह सकता है, जैसे अंगुली कटा हाथ, हथकटी भुजा, भुजा कटा शरीर। इसी प्रकार उपादान-उत्पाद संबंध है जैसे मिट्टी का घड़े, कुल्हड़, आदि से या चीनी का जलेबी, बर्फी आदि से। संक्षेप में आर्थी क्षेत्र, वर्ग, उपवर्ग के व्यष्टि किसी-न-किसी आर्थी संबंध से बँधे रहते हैं।

12.3 पर्यायता

पर्यायता नाम-रूपा संबंधों में से वह संबंध है जहाँ एक 'रूप' के अनेक 'नाम' भाषाविशेष में मिलते हैं। उदाहरणार्थ हिंदी में एक 'रूप', 'चन्द्रमा' के लिए "चांद, चंदा, चन्द्र, रजनीकर, हिमरश्मि" आदि अनेक 'नाम' मिलते हैं। ये सब नाम आपस में पर्याय हैं और एक के स्थान पर दूसरा, कभी-कभी कुछ प्रतिबंधों के अधीन, स्थानापन्न हो सकते हैं। आगे इसकी विवेचना की जा रही है कि भाषा में पर्यायता की स्थिति क्यों आती है तथा संस्कृत एवं हिंदी की पर्यायता से सामान्यतया उदाहरण लिए गए हैं।

12.3.1 पर्याय का आविर्भाव

बहुभाषिकता की स्थिति

पर्यायता का, विशेषाता हिंदी पर्यायता का, मुख्य स्रोत बहुभाषिकता है। सभ्यता के आदि काल से प्राकृतिक प्रतिकूलता के कारण झुंड के झुंड मानव-समूह अन्यत्र अन्यभाषी प्रदेश में पहुँचते रहते थे और विकसित सभ्यता वाले समाजों में सीमित मात्रा में ही सही लोग धार्मिक, राजनैतिक, व्यापार-वाणिज्यिक, शिक्षा एवं कला क्षेत्रों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए दूसरे देशों में निरंतर जाते थे। इस प्रकार की अन्योन्य क्रिया की स्थिति में बहुभाषिकता की स्थिति प्रायः उत्पन्न् होती थी। बहुभाषिकता की स्थिति में पहले तो आदाता भाषा में दाता भाषा के अनेक शब्द, विशेषतः उन रूपों के लिए जिनसे आदाता परिचित नहीं थे अर्थात् नये थे, अनेक शब्द आ जाते थे (जैसे, रेडियो, बस, चाकू, आदि)। इनसे पर्यायता की स्थिति उत्पन्न नहीं होती है। किंतु जब बाद में, दाता यदि प्रभावी (dominant) है और अनेक भाषा व्यवहार में आदाता के पास उस 'रूप' के लिए निजी 'नाम' होते हुए भी आग्रह (या दुरागह) करता है कि उसका अपना 'नाम' चले तो आदाता भाषा में एक ही 'रूप' के लिए दो 'नाम' हो जाते हैं, एक उसका अपना निजी (जैसे, न्यायालय) और एक प्रभावी दाता की भाषा का (जैसे, कचहरी)। हिंदी क्षेत्र में ऐसी पर्यायता प्रचुर है - पहले मुगल आदि प्रभावी दाताथे और बाद में अंग्रेज़ आदि। इस कारण ऐसे बहुत से युग्म या त्रिक हैं जहाँ हिंदी के अपने 'नाम' को साथ-साथ फारसी या/और अंग्रेज़ी के शब्द मिलते हैं। जैसे - पवन-हवा, पुस्तक-किताब, सुंदर-खूबसूरत, लज्जा-शरम, उद्यान-गार्डन, मानचित्र-एटलस, डॉक्टर-वैद्य-हकीम आदि।

ऐतिहासिकता की स्थिति

पर्यायता का, विशेषतः हिंदी पर्यायता का, एक अन्य प्रमुख स्रोत हिंदी का लंबा इतिहास है। हिंदी भाषा को विरासत में एक विशाल विपुल शब्द भंडार संस्कृत से तत्सम शब्दों के रूप में मिला है। इसके अतिरिक्त संस्कृत से विकसित परवर्ती भाषाओं, जैसे पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, से भी उसे संस्कृत के अनेक शब्द तद्‌भव रूप में मिले हैं, और स्वयं पुरानी हिंदी ने कुछ नये प्रकार के तद्‌भव रूप बनाए थे, वे भी विरासत में हिंदी को मिले हैं। इस कारण एक ही 'रूप' के लिए तत्सम 'नाम', तद्‌भव 'नाम' और देसी 'नाम' (देसी भी विरासत में संस्कृत भिन्न भाषाओं से मिले है) मिल सकते हैं। इस प्रकार के उदाहरण सर्वविदित हैं जैसे, मुख-मुँह, कर्ण-कान, पुष्प-फूल, विद्युत-बिजली, सप्त+सात, कृष्ण-कान्ह, कान्हा और किशन आदि।

विदेशी शब्दों के अनुवाद

विदेशी शब्दों के अनुवाद के कारण भी पर्यायता आ जाती है। कभी-कभी भाषा में पहले से ही शब्द होता है फिर भी विदेशी शब्द का नया रूपांतरण किया जाता है और पर्याय युग्म का जन्म होता है। जैसे equator के लिए विषुवद् रेखा प्राचीन शब्द था, नया शब्द 'भूमध्यरेखा' बना। कभी-कभी नवसृजन दो प्रकार से हो जाता है और पर्याय युग्म सामने आ जाता है, जैसो linguistics के लिए भाषाविज्ञान, भाषाशास्त्र, भाषिकी।

अश्लील/अमंगल परिहार

यह सार्वजनिक/।सार्वभाषिक प्रवृत्ति है कि अश्लील, अशुभ या अमंगल को ज्यों का त्यों अभिधा में न कहा जाए - ऐसा कहना शालीनता से परे होता है। बच्चों को 'शू' या एक अंगुली ऊपर उठाना सिखाया जाता है। सुबह सुबह लोग 'दिशा जाते हैं', 'जंगल जाते हैं', 'खेत जाते हैं' और वह स्थल toilet है, bathroom है, प्रसाधन है, शौचालय या शौचागार है। वयोवृद्ध मरते नहीं है - गोलोकवासी होते हैं, सद्गति पाते हैं, स्वर्गवासी बनते हैं और मरण के पर्याय हैं - महानिद्रा, निधन, प्रयाण, देहान्त, देहावसान, परलोकगमन आदि।

साहित्यिक लेखन

साहित्यिक लेखन में पर्याय शब्दों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मानवकृत वस्तुएँ तो प्रायः एक-दो प्रकार्यों के लिए बनाई जाती हैं, किंतु प्राकृतिक सत्ताओं के अनेक प्रकार्य-गुण होते हैं - सूर्य हमें प्रकाश देता है, उष्णता देता है, चन्द्रमा हमें प्रकाश देता है, शीतलता देता है। संस्कृत में इन प्राकृतिक शक्तियों के पौराणिक आख्यान भी होतो हैं और इनके मानवीकरण के कारण माता-पिता या जनक भी होते हैं - इस कारण पर्यायता का परास (रेंज) और भी बढ़ जाता हैं। उदाहरणार्थ चंद्रमा के पर्यायों पर विचार करें :

किरणें श्वेत	:	सितांशु, शुभ्रांशु, श्वेतभानु, सितकर
अंधेरा भगाता है	:	तमीश, तमोघ्न, तमोहर
रात से संबंध	:	रजनीकर, रजनीश, रजनीपति, निशाकर, निशीश, निशापति, निशाना राकेश, राकापति, क्षपाकर, निशारत्न
शीतलता देता है	:	हिमांशु, हिमकर, तुषारांशु
बीच में खरगोश	:	शशी, शशांक, शशधर, मृगधर, मृगांक, छायांक, छायामृगधर, हरिणांक, कलंकी, फुरंकांग
अमृत से संबंध	:	सुधांशु, सोमराज, अमृतरश्मि, सुधाकर, सुधानिधि, ओषधीश
कलाएँ (घटती बढ़ती है)	:	कलानाथ, कलाधर, कलानिधि, इंदु, क्षयी, पक्षज, पक्षधर।
कमल से संबंध	:	कुमुदहर, कोकहर
पौराणिक : तारों का पति	:	नक्षत्रेश्वर, नक्षत्रनाथ, उडुप, उडुराज, नक्षत्रेश, ऋक्षेश, ग्रहराज, तारेश, रोहिणीश, चित्रेश
: समुद्र से निकला	:	अंबुज, जलज, जलधिज, सिंधूद्भव
: शिव के मस्तक पर	:	शिवशेखर

संस्कृत में पर्यायों के आधिक्य के मूल में यौगिक स्तरीय नवरचना है। संस्कृत में 'मूल' शब्द के अनेक पर्याय हैं, साथ में प्रत्यय या उपपदों के भी बहुत से पर्याय हैं। उदाहरण संस्कृत में 'जल' के प्रसिद्ध पर्याय हैं - नीर वारि, पयस्, उद(क), क्षीर, अंबु, सलिल, आप्, तोय, अंभस् आदि। बादल पानी रखता है अतएव - धर लगाने से जलधर, पयोधर, अंबुधर आदि अनेक पर्याय बन गए। बादल पानी का वहन करता है तो वारिवाह, तोयवाह, अंबुवाह आदि अनेक पर्याय बन गए। इस प्रकार बड़ी मात्रा में मेघ के पर्याय बन गए। संस्कृत की इस क्षमता का कवि पूरा-पूरा लाभ उठाते थे, वे काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से ऐसे शब्दों की भी नवरचना कर लेते थे जो प्रायः अप्रचलित होते थे।

छंदोबद्धता के कारण पर्याय प्रयोग

हिंदी में आजकल छन्दोबद्ध पद्य रचना अथवा कविता का प्रचलन नहीं रहा है, अतएव साहित्यिक लेखन में पर्याय शब्दों को खोजने तथा छंदोनुकूल शब्द प्रयुक्त करने की आवश्यकता नहीं होती है। हिंदी के 'प्रिय प्रवास' में छन्दोबद्ध कविता थी और उसका पहला छन्द है :

दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु शिखा पर थी अवराज ती
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा।

यहाँ । । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ लघु गुरु विन्यास है। यहाँ कवि के लिए बंधन है। वह 'गगन' के स्थान पर 'अंबर' या 'आकाश' या 'व्योम' आदि नहीं ला सकती है क्योंकि वे । । । । नहीं है। 'कमलिनी' के लिए भी मज़बूर था क्योंकि 'कमल' के अनेक पर्यायों में 'कमलिनी' ही । । । । ऽ है।

12.3.2 पर्यायता का अर्थविभेदन

शुद्ध पर्यायता की स्थिति में पर्याय शब्दों में से प्रत्येक को दूसरे के स्थान पर बिना बंधन के प्रयुक्त किया जा सकता है। व्यवहारतः यह स्थिति स्पष्ट संप्रेषण को स्वीकार्य नहीं है, उसकी अपेक्षा यथासंभव नाम-रूप में एकैक संबंध की है। अपवाद स्थिति साहित्यिक लेखन की है जहाँ पर्यायता का अपना विशेष महत्व है। इस कारण भाषा व्यवहार में पर्यायों का अर्थविभेदन निरंतर चलता रहता है।

द्विभाषिकता की स्थिति में पर्याय बने शब्द अपनी-अपनी मूल भाषा की संस्कृति से जुड़े होने के कारण कुछ-न-कुछ विभेदी अर्थच्छाया अवश्य रखते हैं। वैद्य-हकीम-डाक्टर विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों से जुड़े हैं। पाठशाला-मदरसा-स्कूल सामान्यतया शिक्षण माध्यम भाषा की विभिन्नता रखते हैं।

द्विभाषिकता की स्थिति में जहाँ संस्कृतिजन्य विभिन्नता स्पष्टतया अंकित नहीं है, वहाँ भाषा व्यवहार में कोडमिश्रण। कोड सामंजस्य विभेदन को जन्म देता है। प्रोक्ति स्तर पर, यदि संस्कृत निष्ठ भाषा का व्यवहार हो रहा है तो तत्सम पर्याय शब्द, यदि उर्दू निष्ठ भाषा या उर्दू कोड मिश्रित भाषा का व्यवहार हो रहा है तो उर्दू पर्याय-शब्द, यदि अंग्रेज़ी कोड मिश्रित भाषा का व्यवहार हो रहा है तो अंग्रेज़ी पर्याय शब्द का प्रयोग होता है। सामान्य अनौपचारिक भाषा व्यवहार में हिंदी भाषी तद्भव शब्दों के बाहुल्य के साथ तद्भव, उर्दू और अंग्रेज़ी पर्याय शब्दों का निस्संकोच प्रयोग अवश्य करता है।

औपचारिक लेखन में संस्कृत तत्सम शब्दों के व्यवहार का प्रचलन है। यहाँ अवश्य अनेक तत्सम पर्यायों में से एक के चयन की समस्या आ सकती है। प्रायः तत्सम पर्यायों में शब्द व्युत्पत्ति के आधार पर अथवा लोक-रूढ़ि के आधार पर अर्थ विभेदन किया जा सकता है। प्रार्थना, निवेदन, विनती, अनुरोध आदि स्थूलतया पर्याय होते हुए भी विभिन्न स्पष्ट प्रसंग में प्रयुक्त किए जाते हैं (यह सर्वविदित है अतएव विस्तार भय से व्याख्या नहीं की जा रही है।)

व्याकरणिक पर्यायता

संज्ञाओं, विशेषणों और क्रियाओं में पर्यायता बड़ी मात्रा में होती है, व्याकरणिक शब्दों, जैसे, क्रिया विशेषणों, समुच्चय बोधकों, उद्‌गार शब्दों आदि में भी पर्यायता मिलती है। भाषाई सबल अभिव्यक्ति के लिए व्याकरणिक पर्यायता बहुत महत्वपूर्ण है। कुछ उदाहरण हैं : सदा, सर्वदा, हमेशा, और, तथा, एवं, किंतु, लेकिन, पर, परंतु, यदि, अगर, आदि आदि।

12.4 अनेकार्थता

अनेकार्थता वह नाम-रूप संबंध है जहाँ एक 'नाम' का प्रयोग अनेक 'रूपों' के लिए किया जाता है, जैसे 'पत्र' नाम का प्रयोग 'पत्ते' के लिए भी होता है और 'चिट्ठी' के लिए भी। अनेकार्थता सभी भाषाओं में मिलती है, एकार्थता की स्थिति विरल होती है। शुद्ध एकार्थता का अच्छा उदाहरण तकनीकी पद हैं जिनके अर्थ सुपरिभाषित होने के कारण सीमाबद्ध, अपरिवर्तनीय और अनन्य होते हैं, जैसे विज्ञान में स्पर्शज्या, आक्सीजन, प्रकाशवर्ष।

'कल्पना' मानव की नैसर्गिक एवं विलक्षण अंतर्जात क्षमता है जोकि आदि मानव में भी थी और आज इक्कीसवीं सदी की ओर जाने वाले मानव की भी। इसी कल्पना का पहला सहारा आदि मानव ने लिया जब उसे किसी पूर्व-अपरिचित 'रूप' या परिचित 'रूप' के किसी अवयव को नया नाम देने की आवश्यकता पड़ी। उसकी सहज कल्पना 'मानवीयीकरण' की थी, और मानव अंगों के नाम उन पर अंतरित करने की प्रवृत्ति प्रबल थी। पेड़ के सबसे ऊपर के भाग को 'शीर्ष' माना गया, जड़ के पास के भाग को 'पाद' और शाखाओं को 'भुजा'। सूर्य की किरणों को लंबा हाथ माना गया जिसे बढ़ाकर वह हमें उष्णता का 'दान' करता है। रूपकीकरण की यह प्रवृत्ति आरंभिक मानव में ही सीमित नहीं थी। आज जब हम बुद्धि का सहारा लेकर भाषावैज्ञानिक विधियों द्वारा पूर्वप्रचलित शब्दों, मूलांशों प्रत्ययों और इनके विविध संयोजनों को नया 'नाम' देते हैं। तब भी कल्पना की इतिश्री नहीं हुई। कंप्यूटर के एक उपकरण को mouse का 'नाम' देना इसका उत्तम उदाहरण है।

12.4.1 हिंदी में शब्द स्तरीय अनेकार्थता

(क) **विरासत में मिली अनेकार्थता :** हिंदी को मुख्यतया संस्कृत से शब्दावली मिली है। संस्कृत अनेकार्थता के विषय में बहुत समृद्ध भाषा है। वहाँ 'हरि' के 24 अर्थ गिनाए गए हैं, जिनमें प्रमुख हैं - विष्णु, इन्द्र, शिव, ब्रह्मा, यम, सूर्य, चन्द्र, मनुष्य, वानर, अश्व, सर्प आदि। संस्कृत में 'क', 'ख', 'ग', 'घ' आदि वर्णों के भी कई-कई अर्थ कोशों में मिलते हैं - 'क' के अर्थ हैं - ब्रह्मा, विष्णु, कामदेव, अग्नि, सूर्य, पक्षी, मन, काल, मेघ्ज्ञ, पक्षी आदि। ख़ैर, ये तो मुख्यतया साहित्यिक रचनाओं और सभंगश्लेष में प्रयुक्त होते हैं, फिर भी विशाल संख्या वे अनेकार्थ हैं जिनसे हम आज भी परिचित हैं। उदाहरणार्थ - पत्र (पत्ता, चिट्ठी), अंक (गिनती, चिह्न, गोद), कर (हाथ, किरण, टैक्स), पक्ष (पंख, दोनों ओर के अवयव, अनुकूल-प्रतिकूल समूह), नव (नया, नौ) आदि आदि।

(ख) **ऐतिहासिक ध्वनि प्रक्रिया परिवर्तन और आदान के ध्वन्यैक्य से उत्पन्न अनेकार्थता:** हिंदी का एक लंबा इतिहास है। संस्कृत के अनेकानेक शब्द पालि-प्राकृत-अपभ्रंश-पुरानी हिंदी से गुजरते हुए हमारे पास पहुँचे हैं और उनमें ध्वन्यात्मक परिवर्तन भी हुए हैं। इन ध्वन्यात्मक रीति से परिवर्तित शब्दों को हम 'तद्‌भव' कहते हैं। इन तत्सम-तद्‌भव अथवा तद्‌भव-तद्‌भव में कभी-कभी ध्वन्यैक्य स्थिति आ जाती है और अनेकार्थता का जन्म हो जाता है। जैसे - काम (तत्सम) - काम (तद्‌भव < कर्म), बेर (तद्‌भव < बदर) - बेर (तद्‌भव < वेला) आदि।

हिंदी में हिंदी-भिन्न भाषाओं से आदान लिए शब्दों की संख्या भी विशाल है। अपनी भगिनी भाषाओं, जैसे, बंगाली, मराठी, गुजराती आदि से तो शब्द लिए ही गए हैं, विदेशी भाषाओं से विशेषतः अरबी-फ़ारसी तथा अंग्रेज़ी से निःसंकोच शब्द लिए गए हैं, और ऐसी स्थिति में ध्वन्यैक्य की स्थिति आना कठिन नहीं है।

'बस' शब्द संस्कृत 'वश' का तद्भव है, अंग्रेज़ी 'बस' का आदान शब्द है, और अरबी फ़ारसी 'बस' का आदान शब्द भी है। कुछ और उदाहरण हैं - आम (तद्भव < आम्र) - आम (अरबी 'सामान्य'), चंदा (तद्भव < चन्द्र) - चंदा (फारसी 'चन्दः'), पर (<परंतु), पर (फारसी "पक्षी के पंख") आदि।

(ध्यान दें कि भाषाविज्ञान में इन्हें समरूपी शब्दयुग्म कहा गया है और अनेकार्थता से भिन्न माना गया है। किंतु सामान्य हिंदी-भाषा के मन में इन्हें अनेकार्थता ही माना जाता है।)

(ग) **नवशब्द निर्माण से उत्पन्न अनेकार्थता :** भारत की वर्तमान भाषाओं में हिंदी को सबसे अधिक नवशब्द निर्माण की चुनौती का सामना करना पड़ा है। उत्तर भारत के प्रायः सभी महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा तकनीकी शिक्षा संस्थानों को हिंदी माध्यम से अध्ययन-अध्यापन करना पड़ रहा है, अतएव शैक्षिक विषयों की तकनीकी शब्दावली के विकास के लिए भारत सरकार ने एक वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का गठन किया है जो पिछले पचास सालों से हिंदी शब्दों का निश्चयन कर रहा है। राजभाषा होने के कारण भी प्रशासनिक तथा सभी मंत्रालयों से संबद्ध शब्दावली के कारण भी प्रशासनिक तथा सभी मंत्रालयों से संबद्ध शब्दावली के हिंदी शब्दों का विकास हो रहा है। इस कार्या में संस्कृत शब्दों मूलांशों, प्रत्ययों तथा उनके विविध संयोजनों का सहारा लिया जाता है अतएव स्वाभाविक है कि नवरचित शब्द का एक अर्थ संस्कृत का पुराना और एक अर्थ आज का। उदाहरणार्थ 'मंत्रालय' तो संस्कृत में 'मंत्रालय' न होने के कारण एकार्थी है, किंतु 'मंत्री' संस्कृत में आज के minister के अर्थ में नहीं था, वहाँ वह 'सलाह देने वाला' के अर्थ में था। अतएव 'मंत्री' के दो अर्थ हो गए। इसी प्रकार 'आकाशवाणी' के दो अर्थ हो गए। 'निकाय' अब bodies, system (of equations) के लिए है, और 'झुंड' इसका पुराना अर्थ है।

(घ) **हिंदी के प्रत्ययों के अनेकार्थी होने के कारण अनेकार्थता :** हिंदी में कुछ प्रत्यय अनेकार्थी हैं अतएव उनसे बने शब्द भी अनेकार्थी हो गए हैं, जैसे - धुलाई (धोने की मज़दूरी) - धुलाई (धोने की प्रक्रिया) - धुलाई (धोने की प्रक्रिया का परिणाम), पहाड़ी (पहाड़ पर रहने वाला) - पहाड़ी (छोटा पहाड़)। संबंधवाची प्रत्यय के तो अनेक अर्थ होते हैं, अतएव बनारसी (बनारस का रहने वाला) - बनारसी (बनारस में बना या पैदा किया जैसे, "बनारसी साड़ी/बनारसी पान)। प्रेरणार्थक रूप 'खिलाना' के तीन अर्थ हैं - खाना खिलाना, फूल की कली को खिलाना, खेल खिलाना।

रूप रचना में प्रत्ययों के ध्वन्यैक्य के कारण भी अनेकार्थता आ जाती है। 'पेड़ा+ओं= पेड़ों' और पेड़+ओं = पेड़ों', माँग (संज्ञा) + स्त्रीलिंग-बहुवचन प्रत्यय एँ→माँगें (जैसे हमारी माँगें), क्रिया धातु माँग (माँगना)+इच्छार्थक क्रिया प्रत्यय एँ→माँगें (जैसे हम उनसे माँगें) इसके कुछ उदाहरण हैं।

(ङ.) **अनेकार्थता के कुछ अन्य स्रोत :** अनेकार्थता का एक सामान्य स्रोत 'जाति' वाचक शब्द है जो अपने सभी सदस्यों को इंगित करता है। जैसे 'फल' नाम द्वारा 'केला' - रूप 'आम' - रूप, 'संतरा' - रूप आदि से अनेक रूपों को इंगित किया जा सकता है। इसी प्रकार 'मिठाई' नाम द्वारा जलेबी, बर्फी, गुलाब, जामुन आदि रूप प्रदर्शित होते हैं। इसीलिए संदिग्धता निवारण के लिए 'फल ले आना' के तुरंत बाद पूछा जाता है कि कौन-से फल। इन शब्दों को 'आच्छादक' (cover) नाम भी कहते हैं।

एक अन्य अनेकार्थता की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति नाम का ही प्रयोग उसके आविष्कार के साथ किया जाता है। विज्ञान में न्यूटन, जूल, वाट आदि अनेक इकाइयों के नाम व्यक्ति नाम पर है।

12.4.2 शब्द संयोग-स्तर पर अनेकार्थता

अनेकार्थता की एक स्थिति वह है जब अर्थ की अनेकता शब्दस्तर पर न होकर शब्द संयोग स्तर पर होती है। इस स्तर पर विभिन्न विग्रह पर विभिन्न अर्थ मिलते हैं। जैसे :

असरकारी (अ+सरकारी) संस्थाएँ सरकारी संस्थाओं की अपेक्षा अधिक असरकारी (असर+कारी) होती हैं।

God is no where → God is now here

आ जाऊँगा → आज+आऊँगा / आ + जाऊँगा

संस्कृत में इन्हे सभंग श्लेष कहते हैं। संस्कृत महाकाव्यों में बड़े-बड़े विचित्र उदाहरण मिलते हैं। श्रीहर्ष रचित नैषधीय चरित दमयंती स्वयंवर में इन्द्र, धर्मराज, कुबेर, वरुण और नल उपस्थित हैं। परिचय कराने वाले निम्न एक श्लोक से :

दैवः पति र्विदुषि नैषधराज गत्या
निर्णीयते न किमु न व्रियते भवत्या।
नायं नलः खलु तवा तिमहानलाभो
यद् येनमुज्झसि वरः कतरः परस्ते।। (13/28)

पाँचों का परिचय, सभंग श्लेष की सहायता से कराता है। हिंदी में भी रीति-काल में सभंग श्लेष का प्रचुर प्रयोग होता था।

संस्कृत महाकाव्यों में कुछ महाकाव्य विश्वसाहित्य में अनुपम हैं। राघवपाण्डवीयम् पूरे 18 सर्गों का महाकाव्य है किंतु इसमें निरंतर दो कथानक चलते हैं - रामायण के और महाभारत के। और यह कौशल केवल सभंग श्लेष के द्वारा संभव हुआ है।

12.4.3 अनेकार्थता की स्थिति में अर्थविनिश्चय

अनेकार्थता की स्थिति में अनेक अर्थों में से कौन-सा अर्थ लिया जाए इस पर, विशेषतः प्राचीन भारत में, बहुत कार्य हुआ है। भर्तृहरि की ये कारिकाएँ बहुचिर्चित हैं :

संसर्गो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिङ्ग शब्दस्यान्यस्य संनिधिः।।
सामर्थ्य मौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः।
शब्दार्थ स्यानवच्छेदे विशेष स्मृतिहेतवः।। वा.प. 2/317, 318

1. संयोग/संसर्ग : 'सशंरवचक्रो हरिः' में शंख-चक्र के उल्लेख से 'हरि' का अर्थ 'विष्णु ' है क्योंकि शंखचक्र का संयोग विष्णु के साथ प्रसिद्ध है।
2. विप्रयोग : अशंखचक्रो हरिः' यहाँ भी 'हरि' का अर्थ 'विष्णु' रहेगा क्योंकि शंखचक्र का सहित-रहित भाव विष्णु के साथ ही संभव है।
3. साहचर्य : 'भीमार्जुनौ' में भीम के साहचर्य के कारण 'अर्जुन' का अर्थ पाण्डव अर्जुन से होगा न कि कार्तिवीर्य अर्जुन से।
4. विरोधिता : 'कर्णार्जुनौ' अर्जुन के प्रबल विरोधी 'कर्ण' के उल्लेख के कारण अर्जुन पाण्डवीय होगा, न कि कार्तिवीर्य अर्जुन।
5. अर्थ (=प्रयोजन) : 'स्थाणुं वन्दे' में स्थाणु के दो अर्थों - शिव और खंभा में 'शिव' का ही अर्थ निकलेगा क्योंकि खंभे की कोई वन्दना नहीं करता।

6. प्रकरण : 'सर्व' जानाति देवः'। 'देव' का व्यवहार 'देवता' और अपने से वरिष्ठ अधिकारी दोनों के लिए है। यदि व्यक्ति व्यक्ति से कह रहा है तो 'देव' का अर्थ 'आप' होगा।

7. लिंग (=लक्षण/पहचान) : कामदेव की ध्वजा में 'मकर' है अतएव 'कुपितो मकरध्वजः' में मकरध्वज का अर्थ काम देव होगा, न कि समुद्र।

8. अन्य शब्द सान्निध्य : यह एक प्रमुख विनिश्चय साधन है। 'रामो जामदग्न्यः' में जामदग्न्य के सामीप्य से राम का अर्थ परशुराम होगा।

9. सामर्थ्य : 'मधुना मत्तः पिकः' में 'मधु' के तीन अर्थों - शहद, सुरा, वसंत में 'वसन्त ऋतु' अर्थ लिया जाएगा क्योंकि कोयल को मत्त करने का सामर्थ्य वसन्त में ही है।

10. औचित्य : 'पातु वो दयितामुखम्' में औचित्य के आधार पर मुख शब्द का अर्थ साम्मुख्य लिया जाएगा, क्योंकि उसी से विरही नायक की रक्षा हो सकती है, मुख (मुँह) से नहीं।

11. देश : देश का अर्थ है स्थान। 'विभाति गगने चन्द्रः' कहने पर चन्द्रमा का ही बोध होगा, कपूर का नहीं। 'ताम्बूले चन्द्रः' कहने पर 'कपूर' का अर्थ लिया जाएगा, चन्दमा का नहीं।

12. काल : 'चित्रभानु' के दो अर्थ हैं - सूर्य, चन्द्रमा। 'निशि चित्रभानुः' में चंद्रमा का अर्थ और 'दिवा चित्रभानुः' में सूर्य का अर्थ समय के संकेत के कारण होगा।

13. व्यक्ति : व्यक्ति से तात्पर्य पुंलिंग/स्त्रीलिंग/नपुंसक लिंग है। 'मित्रो भाति' में पुलिंग होने के कारण मित्र का अर्थ सूर्य है, 'मित्रं भाति' में नपुंसक होने के कारण 'मित्र' (=दोस्त) है।

14. स्वर : स्वर से तात्पर्य उदात्त, अनुदात्त, स्वरित से है। वृत्तासुर ने इन्द्र का नाश करने के लिए यज्ञ में 'इन्द्रशत्रुर्वधस्व' इस अभिचार मन्त्र का जप करवाया था। कितु इस मन्त्र में अन्तोदात्त के स्थान पर आद्युदात्त उच्चारण करने से, इन्द्र के स्थान पर स्वयं वृत्त का ही विनाश हो गया।

15. आदि : 'आदयः' पद से साहित्यचार्यों ने अभिनय (इंगित) का अर्थ ग्रहण किया है। 'इतना' कहने के साथ हाथ का संकेत बहुत कुछ स्पष्ट कर देता है।

इस प्रकार अनेक अर्थों में अर्थ का विनिश्चयन कई युक्तियों से होता है। स्थूलतया दो वर्ग हैं- सहपाठ्यीय (co-textual) अर्थात् वाक्यान्तर्गत अन्य शब्द द्वारा अथवा प्रकरण-परक (contextual) अर्थात् वाक्य से बाहर बाह्य जगत् की स्थिति। 'सैन्धवं आनय' यदि खाना खाते समय कहा गया है तो 'सैन्धव' का अर्थ नमक है, यदि बाहर यात्रा के समय कहा गया है तो सैन्धव का अर्थ 'घोड़ा' है।

12.5 विलोमता

यह ऊपर बताए 'नाम' और 'रूप' के संबंधों से भिन्न प्रकार की स्थिति है। मोटे तौर से हम बचपन से भाषा कक्षा में यह सुनते आ रहे हैं कि 'मित्र' का विलोम 'शत्रु' है, 'रात' का विलोम 'दिन' है, 'भारी" का विलोम 'हल्का' है इत्यादि। आगे इसी विलोम भाव का भाषा वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

12.5.1 ध्रुवीय विलोमता

ध्रुवीय विलोमता की स्थिति में दोनों शब्द दोनों छोर पर होते हैं, जैसे 'जीवित' और 'मृत'। इस स्थिति में व्यक्ति जीवित है तो मृत नहीं है और मृत है तो जीवित नहीं है, और इसके

अतिरिक्त व्यक्ति को जीवित या मृत दोनों में से एक होना आवश्यक है। इस कारण "मोहन जीवित और मृत दोनों है", "मोहन न तो जीवित है और न मृत" वाक्य निरर्थक हैं। इन युग्मों में 'अधिक जीवित', 'अधिक मृत' पदबंध नहीं बन सकते और न तुलात्मक वाक्य कि "मोहन सोहन से अधिक मृत या जीवित है"। इस कोटि के अन्य शब्द हैं 'कुमारी-विवाहिता', 'देशी-विदेशी', 'स्त्री-पुरुष' तथा 'चल-अचल' आदि।

12.5.2 क्रमिकीय विलोमता

क्रमिकीय विलोमता की स्थिति में ऐसे गुणात्मक विशेषण आते हैं जिनमें न्यूनाधिकता तथा तुलनात्मकता होती है। उदाहरणार्थ 'भारी-हल्का' युग्म। "वह वस्तु ज्यादा भारी या बहुत भारी है"। "वह वस्तु कम हल्की या थोड़ी हल्की है", "यह वस्तु उस वस्तु की तुलना में भारी है"। ऐसे ही 'क्रूर-दयालु' युग्म को ले तो "राम बहुत क्रूर है", "सोहन बहुत दयालु है", "राम सोहन से अधिक क्रूर है लेकिन विनोद सोहन से अधिक दयालु है"। ऐसे ही शब्द हैं :

ऊँचा-नीचा, सरल-कठिन, तेज-सुस्त, अच्छा-बुरा, क्रूर-दयालु, सुखी-दुःखी, खट्टा-मीठा आदि।

ये गुण क्रमिकता में स्थित होते हैं। एक ही वस्तु एक दृष्टि से ऊँची है तो दूसरी दृष्टि से नीची, किसी को खट्टा आम खाने के बाद एक आम मीठा लगा, और वही आम दूसरे को जो अधिक मीठा आम खा चुका है, खट्टा लगा। यह व्यक्तिनिष्ठता इन सभी विलोम-युग्मों में है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु को ऊँचा या नीचा होना आवश्यक नहीं है, वह समतलीय हो सकती है। ऐसा व्यक्ति भी हो सकता है जो न तो दुःखी हो और न सुखी या दुःखी भी हो और सुखी भी।

12.5.3 संबंधी विलोमता

संबंधी विलोमता वह स्थिति है जहाँ संज्ञाएँ आपस में किसी संबंध से बंधी हैं। पति-पत्नी, भाई-बहन, माँ-बेटा, गुरु-शिष्य, पूर्वज-वंशज डॉक्टर-मरीज़, आदि ऐसे ही संबंध हैं। इस स्थिति में :

A, B का पति है तो B, A की पत्नी।

A, B का भाई है तो B, A की बहन।

A, B का गुरु है तो B, A की शिष्या।

A, B का मरीज है तो B, A की डाक्टर। आदि होते हैं।

12.5.4 अनुवर्ती विलोमता

कुछ क्रियाओं का पारस्परिक संबंध ऐसा होता है कि एक क्रिया दूसरे की अनुवर्ती होती है। जैसे, खोलना-बंद करना, चलना-रुकना, भरना-खाली करना आदि। खोलने की स्थिति तभी आती है जब कुछ पहले से बंद हो, बंद करने की स्थिति तभी आती है जब पहले से कुछ खुला हो। इसी प्रकार :

गाड़ी चलते-चलते **रुक** गई, गाड़ी रुकते-रुकते **चलने** लगी।

बाल्टी में पानी **भर** रहा है, बाल्टी को **खाली** कर रहा है।

अनुवर्तिता के उदारहण हैं।

12.5.5 मापक्रमीय विलोमता

यह स्थिति प्रायः क्रियाविशेषणों में होती है। किस मापक्रम (स्केल) में पूर्वापर (काल या स्थान या दिशा) की स्थिति ऐसी विलोमता को जन्म देते हैं। जैसे :

A, B के आगे है, इसलिए B, A के पीछे है।

A, B के दाएँ है, इसलिए B, A के बाएँ है।

A, B के बाद आया था, इसलिए B, A के पहले आया था।

संक्षेप में विलोम युग्मों में किसी-न-किसी गुण (attribute) का प्रबल अंतर होता है -यह अंतर मात्रा का, आकार का (टेढ़ा-सीधा), आकृति का आदि किसी का भी हो सकता है। इन गुणों की उपस्थिति और इन गुणों का अभाव भी विलोमता का सृजन करता है।

12.6 वाक्य स्तर पर अर्थ विवेचन

अभी तक अर्थ का विवेचन शब्द-स्तर तक (lexically) सीमित था, अब वाक्य स्तरीय विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

12.6.1 वाक्यार्थ बोध की प्रक्रिया

संप्रेषण की लघुतम इकाई वाक्य है। वक्ता को अपनी बात पूरी करने के लिए कम से कम एक पूरे वाक्य की अपेक्षा है और श्रोता भी जब तक वाक्य पूरा नहीं सुन पाता तब तक संदेश ग्रहण के प्रति आश्वस्त नहीं रहता। बातचीत में ऊपरी तौर से आधे-अधूरे वाक्यांशों या वाक्यों का प्रयोग दिखाई पड़ता है उसका कारण यह है कि वक्ता-श्रोता के बीच जब बड़ी मात्रा में सहभाजित जानकारी (shared knowledge) होती है तब श्रोता प्रकरणानुसार अनुमान लगा लेता है कि वक्ता क्या कहने जा रहा है और वक्ता भी इतने से ही श्रोता समझ जाएगा वाक्य के अनेक अंश अनबोले छोड़ देता है। किंतु यदि इतना मानसिक तादात्म्य नहीं है तो सामान्यतया पूरे वाक्यों का प्रयोग किया जाता है।

वाक्यार्थ कई चरणों में होता है यद्यपि यह सब इतने शीघ्रातिशीघ्र होता है कि श्रोता को यह पता नहीं लगता कि कब कौन-सा चरण समाप्त हुआ और कब कौन-सा प्रारंभ।

चरण-1 : श्रोता प्रत्येक शब्द का 'पद ज्ञान' करता है, 'शक्तिमान' करता है, 'पदार्थ' ज्ञान करता है। इस प्रकार शाब्दी अर्थ और तत्संबंधी व्याकरणिक अर्थ की जानकारी उसे होती है। ऐसा क्रमशः प्रत्येक शब्द के साथ होता है जब तक वाक्यान्त नहीं होता। यह सब उसकी चालू स्मृति में जमा होता रहता है।

चरण-2 : (क) वाक्यान्त के बाद श्रोता इन चालू स्मृति स्थित पदों को पदबंधों में और पदबंधों को कारकीय संरचना में बाँधता है। एक कच्चा वाक्यीय वृक्ष-आरेख बन जाता है।

(ख) क्रिया धातु पर विशेष ध्यान देकर, क्रिया से संबद्ध अपेक्षित पदबंधों के खाँचे (slots) बना लेना। जो सकर्मक क्रिया है तो कर्म का खाँचा, द्विकर्मक क्रिया है तो कर्म$_1$ और कर्म$_2$ का खाँचा।

(ग) अध्याहार खाँचों में पूर्ववाक्य/प्रकरण से खाँचा भरना। अर्थात् 'कहाँ जा रहे हो?' 'पुणे' तो (मैं) पुणे (जा रहा हूँ) पूरा वाक्य बनाना।

(घ) सर्वनामों, सार्वनामिक विशेषण एवं क्रिया विशेषणों के स्थान पर जिस संज्ञा का स्थानापन्न सर्वनाम है उसे रखना। मोहन ने कहा कि मैं अपनी किताब पढ़ रहा हूँ - मोहन ने कहा कि मोहन मोहन की किताब पढ़ रहा है।

इस पर वाक्यीय वृक्ष-आरेख समग्रतः तैयार हो जाता है।

चरण-3 : इस वाक्यीय वृक्ष-आरेख पर विहंगम दृष्टि डाल कर अनेकार्थता जन्य अथवा व्याकरणिक संदिग्धता को यदि वह है, दूर करना। इस प्रकार अभिधा-आश्रित वाक्यार्थ मिल जाता है।

चरण-4 : किंतु अभिधा-आश्रित वाक्यार्थ मात्र संदेशग्रहण नहीं कराता। वाक्य का अर्थ (=प्रयोजन) ही असली वाक्यार्थ है। वक्ता बोला ही क्यों? वक्ता ने यह

संदेश क्यों दिया? वक्ता श्रोता से संदेश ग्रहण के बाद क्या अपेक्षा करता है? इन का उत्तर ही 'प्रयोजन' है और 'प्रयोजन' श्रोता की प्रेरक शक्ति है जो श्रोता से वक्ता-अपेक्षित कार्रवाई कराती है। प्रयोजन की जानकारी वक्ता-श्रोता के 'सहभाजित ज्ञान' पर निर्भर होती है। 'शाम हो गई' का अभिधा आश्रित अर्थ तो एक ही है किंतु प्रयोजनानुसार "अब घर वापिस चलें" "शाम वाली दवाई खा लो", "ऊनी कपड़ा पहन लो" आदि अनेक हैं। संस्कृत में इसे 'व्यंजना' कहते हैं।

इस प्रकार वाक्यार्थ प्राप्ति के लिए शब्दार्थ-ज्ञान (semantic), व्याकरणिकार्थ-ज्ञान (grammatical), वाक्यीय (syntactic) ज्ञान, प्रोक्ति का सहपाठ्यीय संबंधी (cotextual) का ज्ञान तथा प्रोक्ति का प्रकरणात्मक (contextual) ज्ञान आवश्यक है। जैसा कि मोटे तौर से लगता है कि वाक्य में आए प्रत्येक शब्द का शब्दार्थ आता हो तो वाक्यार्थ भी जाना जाएगा, ऐसा नहीं है।

12.6.2 वाक्य-स्तर पर अनेकार्थता

ऊपर व्यंजना जन्य वाक्य स्तरीय अनेकार्थता का उदाहरण दिया जा चुका है। कभी-कभी सार्वनामिक विशेषण अथवा क्रिया विशेषण सर्वनामता किस संज्ञा के साथ है स्पष्ट नहीं कर पाता है (विशेषतः तब जब विशेष्य सर्वनाम के समीप न हो) और भ्रामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। व्याकरणिक अनेकार्थता का उदाहरण 'राम का चित्र' है जहाँ राम चित्र का विषय हो सकता है, राम (किसी और के) चित्र का चित्रकार हो सकता है और राम चित्र का धारक/स्वामी हो सकता है। वाक्यीय अनेकार्थता का उदाहरण है : "सिपाही ने दौड़ते हुए चोर को पकड़ा"। "मोहन को सोहन को दस रुपए देने हैं", में तो अंत तक पता नहीं लग पाता है कि किसे देना है और किसे लेना है।

12.6.3 वाक्यस्तरीय पर्यायता

यह बहुत सामान्य है। बार-एक एक-सी व्याकरणिक संरचना अरोचकता न उत्पन्न करे या अनेक वैकल्पिक संरचनाओं में एक विशेषतया अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाती है, वैकल्पिक संरचनाओं का प्रयोग होता है। पाश्चात्य भाषाविज्ञान में इसे aagnate स्थिति बताते हैं। वाच्य-परिवर्तन, सरल/मिश्र/संयुक्त वाक्यों में परस्पर अंतरण, आदि इसके साधन हैं। शब्द और पदबंध का परस्पर-अंतरण प्रायः भाषा कक्षाओं में सिखाया जाता है, जैसे :

अनाथ : जिसके माता-पिता न हों
विधुर : जिसकी पत्नी का निधन हो गया हो

12.6.4 वाक्यस्तरीय विलोमता

विलोमता में नकारात्मकता का कुछ-न-कुछ अवयव होता है। सभी भाषाओं में, और हिंदी में विशेषतया, नकारात्मक शब्द स्तर, प्रत्यय स्तर, पदबंध स्तर आदि अनेक स्तरों पर आती है। 'नहीं' के प्रयोग से प्रायः यह उत्पन्न होती है। "मोहन स्वस्थ है" या "मोहन बीमार नहीं है" आदि उदाहरणों से हम सब परिचित ही हैं।

इस प्रकार इस पाठ में 'अर्थ' के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। अर्थ ही भाषिक प्रयोग का चरम लक्ष्य है, शब्द, ध्वनि आदि तो उसके साधन मात्र हैं किंतु खेद है कि अध्ययन-अध्यापन में इस पर अपेक्षाकृत कम बल दिया जाता है। संप्रेषण क्रांति की यह प्रबल माँग है कि अर्थ-शक्तियों पर विशेष अनुसंधान किए जाएँ ताकि राज संदेश जनमानस तक प्रबलतया पहुँच सके और देश सही अर्थ में इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर सके।

12.7 सारांश

भारतीय भाषा अध्ययन की परंपरा में अर्थ की विशद व्याख्या हुई है और वैज्ञानिकों ने नाम और रूप के संबंध को भाषा की अर्थ संरचना के अध्ययन का आधार माना है। हम भाषा में

शब्द और अर्थ के विभिन्न संबंधों की व्याख्या करते हैं जिससे कि भाषा की अर्थ संरचना स्पष्ट हो सके। भाषा के शब्द यादृच्छिक हैं और अर्थ के प्रतीक हैं। लेकिन शब्द और अर्थ का संबंध एक-एक का नहीं होता बल्कि अक्सर एक शब्द के कई अर्थ सामने आते हैं या एक ही अर्थ के लिए कई शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इस स्थिति के कई कारण हो सकते हैं। भाषा में परिवर्तन दूसरी भाषा से शब्द ग्रहण करने की स्थिति भाषा के भीतर किन्हीं स्थितियों में जैसे अमंगल या अशलील संदर्भों में शब्द न बोलने और शब्द को छिपा कर बोलने की प्रवृत्ति, साहित्य में सामान्य से हटकर कुछ नया कहने की शैलीगत व्यवस्था ये सब शब्द और अर्थ के संबंध में परिवर्तन लाते हैं।

भाषा विकल्प की वस्तु है। यानी भाषा हमें एक ही बात को कई प्रकार से कहने की छूट देती है साथ में हम यह भी देखते हैं कि कोई कथन संदर्भ के अनुसार भिन्न-भिन्न अर्थ देता है। इस तरह पर्याय की अवस्था केवल शब्द तक सीमित नहीं है बल्कि वाक्य में भी हम अनेकार्थता आदि अवस्थाएँ देखते हैं।

भाषा की अर्थ संरचना का ज्ञान भाषा के अच्छे प्रयोग के लिए आवश्यक है। भाषा के प्रयोग को समझने के स्तर पर शब्द के सही अर्थ या संदर्भ को प्रकट न करना दोष माना जाएगा। इस स्तर पर अच्छी अभिव्यक्ति के लिए अर्थ संरचना का ज्ञान आवश्यक है। जहाँ तक साहित्यिक भाषा का सवाल है पर्याय अभिव्यक्ति अकौशल को बढ़ाता है और अनेकार्थता के कारण श्लेष आदि अलंकारों की पुष्टि होती है। इस संदर्भ में कह सकते हैं कि भाषा के सशक्त प्रयोग के लिए अर्थ संरचना का ज्ञान अतिआवश्यक है।

12.8 अभ्यास प्रश्न

1. **निबंधात्मक प्रश्न**
   (1) शब्द की संकल्पना स्पष्ट कीजिए।
   (2) भाषा की आर्थी संरचना का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

2. **टिप्पणी लिखिए**
   (1) विलोमता
   (2) पर्यायता
   (3) अनेकार्थता
   (4) वाक्य और अर्थ का संबंध

3. **वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

अभ्यास-1

सही शब्द चुनकर वाक्य पूरे कीजिए।

(i) पर्याय काम (कर्म, वासना) .... के कारण बना है। (ऐतिहासिक परिवर्तन/उधार)

(ii) 'जीवंत ', 'मृत ' इन दो शब्दों .... विलोमता है। (क्रमिकीय/ध्रुवीय)

(iii) 'दिशा जाना ' .... का उदाहरण है। (अमंगल परिहार/ अप्रचलित प्रयोग)

(iv) उर्दू से आये कई शब्द .... का निर्माण करते हैं। (शैलभेद/पर्यायता)

(v) ....अनेकार्थी शब्द का उदाहरण है। (अंक/दस)

अभ्यास-2

सही/गलत में उत्तर दीजिए।

(i) वाक्यार्थ में अनेकार्थता नहीं होती। (सही/गलत)

(ii) शब्द और अर्थ को 'नाम' और 'रूप' की संकल्पना से समझ सकते हैं। (सही/गलत)

(iii) 'भाई', 'बहन' संबंधी विलोमता के उदाहरण हैं। (सही/गलत)

(iv) साहित्यिक भाषा में पर्याय नहीं होते। (सही/गलत)

(v) 'फूल' और 'कमल' का संबंध वर्ग और सदस्यता का है। (सही/गलत)

उत्तर

अभ्यास-1

(i) ऐतिहासिक

(ii) ध्रुवीय

(iii) अमंगल परिहार

(iv) पर्यायता

(v) अंक

अभ्यास-2

(i) गलत

(ii) सही

(iii) सही

(iv) गलत

(v) सही

इकाई 13 प्रोक्ति विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 भाषा प्रकार्य
    13.2.1 ब्यूलर - याकोब्सन-हैलिडे-भारतीय
13.3 प्रोक्ति
13:4 प्रोक्ति प्ररूप
13.5 प्रोक्ति विश्लेषण
    13.5.1. सामाजिक परिवेश
    13.5.2 सामाजिक-संबंध (प्रास्थिति)
    13.5.3 सामाजिक प्रयोजन
    13.5.4 सामाजिक व्यवहार के पैटर्न
    13.5.5 अभिव्यक्ति-शैली
13.6 पाठ
13.7 संसक्ति
    13.7.1 व्याकरण आधारित
    13.7.2 अर्थ आधारित
13.8 पाठ्य विश्लेषण
13.9 सारांश
13.10 अभ्यास प्रश्न

13.0 उद्देश्य

व्याकरण का संबंध आमतौर पर शब्द रचना और वाक्य संरचना के विश्लेषण से है। व्याकरण वाक्य की रचना तक ही सीमित रहते हैं। आधुनिक भाषाविज्ञान भाषा को उसकी प्राकृतिक परिवेश में देखते हैं और भाषा का प्राकृतिक स्वरूप है उसका विविध क्षेत्रों में प्रयोग। जैसे वार्तालाप, भाषण, निबंध, लेखन, पत्र-लेखन आदि। भाषा के प्रयोग के इन्हीं रूपों को हम प्रोक्ति (discourse) कहते हैं।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- प्रोक्ति की परिभाषा दे सकेंगे,
- प्रोक्ति का स्वरूप और प्रकार समझा सकेंगे,
- प्रोक्ति को भाषा के सामाजिक व्यवहार के संबंध में स्पष्ट कर सकेंगे,
- पाठ की व्याख्या कर सकेंगे, और
- पाठ का विश्लेषण कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

मानव एक सामाजिक प्राणी है, यह एक सर्वसम्मत सत्य है। यों तो पशु-पक्षियों और कीटपतंगों में भी न्यूनाधिक सामाजिकता देखने को मिलती है - मधुमक्खियों तथा चींटियों का संगठन प्रायः उदाहरण रूप में उल्लखित किया जाता है - किंतु मानव समाज जैसी जटिलता, व्यापकता और सुगुम्फितता अन्यत्र नहीं मिलती है। कारण अत्यंत सरल है - मानव को भाषा का वरदान मिला है। भाषा समाज के प्रत्येक सदस्य को वह सामर्थ्य देती है जिसे वह अपने विचारों, मनोभावों, कल्पनाओं आदि को दूसरे सदस्य के पास पहुँचा सकता है।

इसके अतिरिक्त भाषा वह माध्यम बनती है जिससे एक पीढ़ी अपनी अर्जित ज्ञान-संपदा, रचना-तकनीकों तथा सामाजिक मूल्यों को अपनी अगली पीढ़ी को सौंपती है और इस अर्पण-ग्रहण परंपरा से मानव-संस्कृति निरंतर प्रगतिशील बनी रहती है।

भाषा किस प्रकार सामाजिक व्यवहार की नींव में है, इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण ब्लूमफ़ील्ड द्वारा दिया जैक और जिल का अन्योन्य - व्यवहार है। जैक और जिल दोनों जा रहे थे। जिल को भूख लगी थी। रास्ते में जिल को बाड़ के पीछे लगे सेब के पेड़ पर सुंदर-सुंदर सेब दिखई पड़े। जिल ने जैक से कहा, "मुझे भूख लगी है, सेब खाऊँगी।" बस, जैक ने छलांग मार कर बाड़ पार की और पेड़ पर चढ़कर कुछ सेब तोड़े। और इस प्रकार जिल ने अपनी भूख मिटाई। यहाँ जिसे भूख लगी थी वास्तव में उसने कोई शारीरिक प्रयत्न नहीं किया, केवल ज़बान हिलाई। इस वाचिक क्रिया ने साथी को शारीरिक प्रयत्न के लिए प्रेरित किया, और उसने कष्ट उठाकर सेब तोडे। कष्ट किसी को और कष्ट का निवारण कोई अन्य करे, यह भाषा द्वारा ही संभव है। भाषा, इस प्रकार, एक ऐसा साधन है, जिससे समाज का प्रत्येक अपनी दक्षता, कुशलता और सामर्थ्य का लाभ, केवल स्वयं को न पहुंचा कर, दूसरों तक पहुँचाता है। यही श्रम विभाजन और श्रमफल वितरण समाज की आधार शिला है।

जिस कंप्यूटर-प्रधान युग में आज हम सब जी रहे हैं, उस युग तक पहुँचाने वाले वैज्ञानिक प्रयोगों और चिंतनों के मूल में भाषा द्वारा आविष्कृत गणना-पद्धति है। जब एक बार भाषा में एक, दो तीन .... आदि शब्द बन गए तब हमें गिनना और जोड़ना आ गया। जोड़ना का व्युत्क्रम घटाना है, तथा पुनः पुनः जोड़ना गुणन-प्रक्रिया है। यह गणित शास्त्र और इससे प्रजनित सभी वैज्ञानिक शास्त्र तथ्यतः भाषा प्रयोग के ही परिणाम है। चिंतन-मनन और स्मरण-प्रत्यास्मरण आदि के मूल में भी भाषा है। हम जब सोचते हैं तब भाषिक रूप में तथ्य तथा आँकड़े हमारे सामने आते हैं।

इस प्रकार समाज के सदस्यों के बीच स्थित अन्योन्यक्रिया तथा संस्कृति के मूलाधार गणना एवं चिंतन-मनन - भाषा के दो प्रमुख प्रकार्य (फंक्शन) हैं। पाश्चात्य विद्वानों और भारतीय मनीषियों ने इस दिशा में गंभीरता से चिंतन किया है। इन प्रकार्यों का संक्षिप्त विवरण आगे दिया जा रहा है।

13.2 भाषा-प्रकार्य

पाश्चात्य भाषा-दर्शन में भाषा-प्रकार्यों का उल्लेख करते ही भाषा-दार्शनिक ब्यूलर का नाम सामने आ जाता है। ब्यूलर (1934) ने तीन प्रकार्यों का निरूपण किया है :

(i) समुद्दिष्ट प्रकार्य (referential function)
(ii) क्रियावृत्तिक प्रकार्य (conative function)
(iii) भावबोधक प्रकार्य (expressive function)

(i) समुद्दिष्ट प्रकार्य में वक्ता का ध्यान बिंदु (फ़ोकस) कथ्य विषय-वस्तु पर रहता है। भाषा का प्रकार्य किसी विषय की सूचना को वक्ता से श्रोता के पास पहुँचना है। यह तथ्य प्रधान है।

(ii) क्रियावृत्तिक में वक्ता ध्यान बिंदु श्रोता है। भाषा का प्रकार्य श्रोता को किसी अभीष्ट क्रिया करने की ओर प्रेरित करना है। यह आदेश, अनुरोध, अनुन्य, प्रेरणा, परामर्श, प्रतिबोधन आदि किसी के द्वारा हो सकता है।

(iii) भावबोधक प्रकार्य में भाषा-व्यवहार का ध्यान बिंदु स्वयं वक्ता है। यहाँ भाषा का प्रकार्य आत्म-अभिव्यंजना अथवा सर्जना है। (देखा जाए तो भारतीय चिंतन की ये

तत् (वह : विषयवस्तु), त्वम् (श्रोता : प्रवर्तना) तथा अहम् (वक्ता : स्त्रष्टा) - प्रधान स्थितियाँ हैं।)

याकोब्सन (1960) ने तीन अन्य, यद्यपि गौण तथा उपरिलिखित तीनों से किसी-न-किसी प्रकार संबद्ध भाषा प्रकार्य जोड़े हैं :

(iv) संपर्कक प्रकार्य (phatic function)

(v) काव्यात्मक (poetic function)

(vi) आधिभाषिक प्रकार्य (metalinguistic function)

(iv) संपर्कक प्रकार्य दो व्यक्तियों के बीच सामाजिक संपर्क स्थापित करने तथा बनाए रखने में सहायता करता है। ट्रेन में पड़ोस में बैठे व्यक्ति से यह कहना कि आजकल मौसम बहुत खराब चल रहा है, केवल बातचीत करने का श्रीगणेश है, कोई सूचना-वाक्य नहीं।

(v) काव्यात्मक प्रकार्य में संदेश को अधिक बल न देकर भाषाई पक्ष पर अधिक बल दिया जाता है - उक्ति-वक्रता, पद लालित्य, अलंकार-प्रवणता आदि इसी के साधन हैं।

(vi) आधिभाषिक प्रकार्य में भाषा का प्रकार्य स्वयं भाषा के लिए होता है, न कि बाह्य जगत् या मनोजगत् के किसी तत्व के लिए। उदाहरणार्थ "मैं घर जा रहा हूँ" बाह्य जगत् से संबद्ध वाक्य में आया 'मैं' वक्ता का पर्याय है। किंतु "मैं एक सर्वनाम है" वाक्य में 'मैं' वक्ता का पर्याय नहीं है, बल्कि भाषा-व्याकरण में उत्तम पुरुष सर्वनाम शब्द 'मैं' का व्यंजक है।

हैलिडे (1970) के अनुसार भाषा प्रकार्य अन्य आधार पर निरूपित किए गए हैं। भाषा प्रकार्य तीन हैं :

(1) प्रत्ययप्रधान प्रकार्य (ideational function)

(2) अंतर्व्यक्तिप्रधान प्रकार्य (interpersonal function)

(3) पाठ्यात्मक प्रकार्य (textual function)

(1) प्रत्यय प्रधान प्रकार्य हमारे अमूर्त प्रत्ययों को मूर्त भाषाई रूप देता है। ये प्रत्यय वस्तुओं, प्राणियों, व्यक्तियों, स्थितियों तथा घटनाओं एवं घटना-चक्रों से संबंधित होते हैं। इस प्रकार्य के दो अंश हैं - अनुभवात्मक (experiential) और तार्किक (logical)। पहले से अनुभवों के निरूपण पर अधिक बल होता है, दूसरे में तार्किक संबंधों पर जो अनुभवों से अप्रत्यक्षतया संबंधित है।

(2) अंतर्व्यक्तिप्रधान प्रकार्य में सामाजिकता पर अधिक बल है। भाषा का बहुत बड़ा दायित्व सदस्यों को समाज में बाँधे रखना है, और इस दिशा में जो अन्योन्य क्रियाएँ होती हैं उनका आधार भाषा व्यवहार ही है।

(3) पाठ्यात्मक प्रकार भाषा का तीसरा प्रकार्य है। संदेश में अंतर्व्यक्त संबंधों और मूल तथा व्युत्पन्न संप्रत्ययों को पाठ में सुगुम्फित करना इस प्रकार्य का लक्ष्य है। भाषाई विकल्पों का चयन करना तथा उन्हें पाठ्यबद्ध करना इस पाठ्यात्मक प्रकार्य का क्षेत्र है।

भारतीय दर्शन के मीमांसा ग्रंथों में भाषा का मूल प्रकार्य 'विधि' निरूपित किया गया है। यह किसी सीमा तक क्रियावृत्तिक प्रकार्य (ब्यूलर) और अंतर्व्यक्तिकप्रधान प्रकार्य (हैलिडे) के समांतर है। भाषा का मूल, प्राकृतिक और जीवशास्त्रीय प्रकार्य यही है कि एक सदस्य किसी

विशेष परिस्थिति या घटना को देखकर अन्य सदस्यों को समय पर सूचित कर सके ताकि सूचनानुसार वह उपयुक्त व्यवहार कर सके। मीमांसा में यह उपयुक्त अभीष्ट व्यवहार यज्ञ का सुष्टुरूपेण संपादन है और उस दिशा में याज्ञिक यजमान व्यक्ति को प्रेरित करता है, दिशा-दर्शन देता है, संपादन में सहायता पहुँचाता है। इन विधि-आत्मक वाक्यों में सबसे व्यापक क्रिया व्यापार 'प्रवर्तना' है। प्रवर्तना ही वस्तुतः भाषा का एक मात्र प्रकार्य है। जब कोई अपनी पत्नी से कहता है कि कल दिल्ली जाना है, तो यह तथ्यात्मक कथ्यपरक संदेश ऊपर से अवश्य सूचना मात्र लगता है किंतु भीतर से प्रवर्तनात्मक है। व्यंजना यह है कि जो कुछ बच्चों के लिए दिल्ली भेजना है, उसे ठीक-ठाक कर दो, बहू को चिट्ठी लिखनी है तो लिख दो, बाजार से मिठाई मँगा दो और रास्ते के लिए नाश्ता तैयार कर दो। इसी प्रकार इस पाठ्यक्रम में यह पाठ आपको पढ़ने व समझने के लिए दे रहे हैं। यह सूचना प्रधान भाषिक कार्य है, तथ्यात्मक प्रकथन-वाक्य हैं, कहीं 'एवं कुरु', 'इदं कुरु' का संकेत नहीं है। किंतु पाठ के आरंभ में उद्देश्यों को यदि आप देखें तो वहाँ पाएँगे कि आप 'प्रोक्ति' को समझ कर प्रोक्ति विश्लेषण कर सकें आदि, जो कि मुख्यतया क्रियावृत्तिक हैं।

13.3 प्रोक्ति

पिछले अनुच्छेदों में भाषा के प्रकार्यों की चर्चा करते समय हमने यह देखा कि हम सब अपने समाज के अन्य सदस्यों के साथ मुख्यतया भाषा के माध्यम से विचारों, भावों, ज्ञान तथा रचना तकनीकों आदि का आदान-प्रदान करते हैं। इन सामाजिक अन्योन्य क्रियाओं में हुए भाषाई (वाचिक) व्यवहार की स्वयंपूर्ण इकाई 'प्रोक्ति' कही जाती है। उदाहरणार्थ पार्क में सुबह टहलने गए दो सज्जन मिल जाते हैं। नमस्ते, दुआ-सलाम के बाद कुछ देर दोनों कुछ बातें करते हैं, तदनंतर नमस्ते, अलविदा कहते हुए दोनों अपने-अपने रास्ते चले जाते हैं। इस सामाजिक अन्योन्य क्रिया में जो भाषा-व्यवहार नमस्ते से प्रारंभ हुआ और अंत में नमस्ते-अलविदा से समाप्त हुआ, वह एक पूर्ण समाजभाषावैज्ञानिक इकाई है -'प्रोक्ति' है। हम इसे भारतीय चिंतन का 'वाक्' भी कह सकते हैं। अर्थात् वागारंभ से वागंत तक का भाषिक व्यवहार 'प्रोक्ति' है। दूसरा उदाहरण शैक्षिक परिवेश का लें। घंटा बजता है। पहले वाले अध्यापक पढ़ा कर बाहर जाते हैं। कुछ देर बाद दूसरे अध्यापक आते हैं। सामाजिक अन्योन्य क्रिया छात्रों के खड़े हो जाने से हो जाती है। यदि 'गुड मार्निंग' आदि का प्रयोग होता है तो तब से, अन्यथा जब अध्यापक पढ़ाने लगते हैं, तब से 'प्रोक्ति' का आरंभ हो जाता है। घंटा बजने पर जब अध्यापक पढ़ाना बंद कर देते हैं, तब भाषिक व्यवहार अर्थात् 'प्रोक्ति' का अंत होता है। ये तो उदाहरण मौखिक प्रोक्ति के थे। लिखित भाषा-व्यवहार में लिखित अंश का आदि अंत स्पष्ट होता है। आपने अपने मित्र को पत्र द्वारा लिखित संदेश भेजा : पत्र स्वयं एक लेखबद्ध अपने में पूर्ण इकाई है - वह एक 'प्रोक्ति' है। पूरा उपन्यास अथवा पूरी कृति या रचना भी एक 'प्रोक्ति' है। आपकी पाठ्यपुस्तक भी एक 'प्रोक्ति' है, उसके अध्याय भी 'प्रोक्ति' हैं, अध्याय के खंड भी प्रोक्ति हैं और एक पैराग्राफ भी एक प्रोक्ति है - यह बात दूसरी है कि आप उन्हें 'प्रोक्तिबंध', 'प्रोक्तिसमुच्चय', 'प्रोक्ति-समूह', 'प्रोक्ति' जैसे कोई नाम, क्रमशः उन्हें दे दें। संक्षेप में प्रोक्ति में आकार का कोई बंधन नहीं है। छोटा-सा नोटिस 'फूल तोड़ना मना है' एक प्रोक्ति है क्योंकि संदेश-प्रेषण की दृष्टि से वह पूर्ण है, और दूसरी और 'महाभारत' जैसे महाकाव्य भी।

इस प्रकार हमने देखा, कि प्रोक्ति एक समाजभाषावैज्ञानिक इकाई है जो संप्रेषण की दृष्टि से, संदेश की पूर्णता की दृष्टि से और आशय-अभिव्यक्ति की दृष्टि से अधूरी नहीं है। इस प्रोक्ति को, जब भाषावैज्ञानिक दृष्टि से देखते हैं, तब वह एक, वाक्य के ऊपर की, व्याकरणिक संरचना है। जिस प्रकार रूपिम (मार्फीम) शब्दों की, शब्द पदबंधों की, पदबंध उपवाक्य की और उपवाक्य वाक्य की उत्तरोत्तर रचना करते हैं, वैसे ही वाक्य 'प्रोक्ति' (व्याकरणिक प्रोक्ति) की रचना करते हैं। अर्थात् 'प्रोक्ति' के संरचक-घटक 'वाक्य' हैं। ये

संरचक वाक्य परस्पर जुड़ कर जब एक संदेश की स्वयंपूर्ण अभिव्यक्ति करते हैं, तब 'प्रोक्ति' बनती है। लिखित संदेश में यह सरलता है कि लेखक प्रायः विचारों की एकात्मकता एक पैराग्राफ स्तर पर निरूपित कर देता है। और इस प्रकार पैराग्राफरूपी प्रोक्ति सहजतः अभिनिर्धारित व पहचानी जा सकती है। पैराग्राफ के सभी वाक्य सुसंबद्ध और सुगुम्फित होकर एक आशय को पूर्णतः व्यक्त करते हैं जो कि 'प्रोक्ति' कहे जाने की पहली शर्त है।

13.4 प्रोक्ति प्ररूप

हमने पिछले अनुच्छेदों में प्रोक्ति के विषय में यह जाना कि वह सामाजिक अन्योन्य-क्रिया के बीच हुआ एक स्वयंपूर्ण भाषिक व्यवहार है। सामाजिक अन्योन्य क्रिया स्वभावतः तभी संभव है जब एकाधिक सदस्य आमने-सामने हों। यह सामाजिक परिस्थिति कई प्रकार की हो सकती हैं किंतु उन्हें दो प्ररूपों में बद्ध किया जा सकता है - एक, जब सदस्य बातचीत कर रहे हों अर्थात् श्रोता स्वयं वक्ता बनता है और वक्ता श्रोता और ऐसा वक्ता-श्रोता-परिवर्तन बार-बार होता है, दूसरे, जब वक्ता ही मुख्यतः संदेश दे रहा है, श्रोता लगभग श्रोता ही बने हुए हैं अर्थात् वक्ता-श्रोता परिवर्तन नगण्य है। इस प्रकार प्रोक्ति के दो मुख्य प्ररूप बनते हैं :

(1) वार्तालाप : (+) वक्ता-श्रोता - भूमिका परिवर्तन

(2) भाषण : (-) वक्ता-श्रोता भूमिका परिवर्तन

इन दो सामान्य प्ररूपों के अतिरिक्त विरलतया वे स्थितियाँ आती हैं जब वाचिक कथन क्रिया तो है, किंतु श्रोता नहीं है। जैसे :

(3) स्व-वार्तालाप : जहाँ वक्ता स्वयं अपना श्रोता बन जता है।

(4) स्व-भाषण : जहाँ वक्ता का न बाह्य न आंतरिक श्रोता है।

इन दोनों को 'स्वालाप' शीर्षक में समेटा जा सकता है।

(1) वार्तालाप : वार्तालाप प्रारूप में वक्ता कुछ बात करता है। सुनने वाला श्रोता सुनकर सुनते-सुनते बिना वक्ता के चुप हुए बोलने लगता है। यदि कई लोग हैं तो प्रायः सभी बातचीत में बोलने की भूमिका अदा करते हैं। प्रायः बातचीत के दौरान ऐसी स्थिति नहीं आती है कि बिल्कुल सन्नाटा पर्याप्त समय तक हो, और सभी या एकाधिक एक ही समय बोल रहे हैं यह स्थिति भी नहीं आती है।

वार्तालाप में प्रायः किसी बात से आरंभ होता है : कभी-कभी उस बात पर कई लोग बोलते रहते हैं किंतु अनेक बार ऐसी स्थिति आती है कि नया-नया बोलने का विषय आने लगता है और लोग उस पर बातचीत करने लगते हैं। कभी-कभी कोई भी विषय केंद्र में या प्रधान नहीं होता और नए विषय तथा पुराने विषय में कोई पक्का तार्किक बंध नहीं होता है, तब वार्तालाप गप-शप बन जाता है।

वार्तालाप का एक प्रभेद चर्चा-परिचर्चा आजकल बहुत प्रचलित है। परिचर्चा में अनेक सदस्य, प्रायः चर्चा विषय के अच्छे जानकार, एक साथ एकत्र किए जाते हैं। एक संयोजक अथवा सूत्रधार होता है जो श्रोताओं में से अगला वक्ता कौन हो इसका संकेत देता है और वह संकेतित व्यक्ति वार्तालाप की कड़ी को आगे बढ़ाता है। यदि संकेतित व्यक्ति के अतिरिक्त कोई बोलने लगता है तो किसी प्रकार उसे अपनी बात शीघ्र समाप्त करने को कहते हैं या टोक देते हैं। छात्रों का ग्रूप-डिस्कशन भी इसी कोटि का है।

वार्तालाप का एक प्रभेद वह है जहाँ एक ही व्यक्ति से अनेक लोग कुछ पूछते हैं। जिससे पूछा जा रहा है उसे श्रोता मान लिया जाए तो वक्ता अनेक है अर्थात् वक्ता श्रोता संबंध बहु-एक (many : one) का है। एम.ए. या पीएच.डी. की मौखिकी परीक्षा तथा सेवार्थ साक्षात्कार (इन्टरव्यू) तथा एक प्रकार से पुलिस आदि की पूछताछ (इन्टेरोगेशन) इसी कोटि की है। इन सबमें जिससे पूछा जा रहा है कुछ कम प्रतिष्ठा का उस उस समय है, इसके विपरीत प्रेस कांफ्रेंस है जहाँ जिससे पूछा जा रहा है वह उच्च प्रतिष्ठा का उस स्थिति में है (यहाँ उच्च प्रतिष्ठा का अर्थ यह है कि उसे महोदय, मान्यवर करके संबोधित किया जाता है)।

(2) **भाषण** : भाषण प्रारूप में एक प्रमुख वक्ता तथा अनेक श्रोता होते हैं। वक्ता की भाषण के समय विशिष्ट सामाजिक प्रास्थिति (स्टेटस) होती है। सामान्यतया उसे टोका या रोका नहीं जाता। भाषण का हमेश एक विशेष विषय तथा प्रयोजन होता है।

भाषणों में सामान्यतया श्रोता प्रत्यक्ष होते हैं और वक्ता वातावरण और श्रोताओं की अनुक्रियाओं पर ध्यान देता है। राष्ट्रपति का संदेश एक ऐसा भाषण है जिसमें कोई प्रत्यक्ष श्रोता नहीं होता है। आजकल दूरदर्शन तथा आकाशवाणी से विभिन्न राजनैतिक दल अपने दृष्टिकोण को जनता के सामने रखते हैं, वहाँ भी प्रत्यक्ष श्रोता नहीं होते हैं। प्रधानमंत्री के लालकिले से पंद्रह अगस्त के भाषण में सामने प्रत्यक्ष श्रोता होते हैं और दूरदर्शन एवं आकाशवाणी से शेष भारतवासी उस भाषण को सुनते हैं1 यहाँ श्रोता प्रत्यक्ष तो होते हैं किंतु केवल मूक दर्शक। अन्य सम्मेलन आदि में श्रोता प्रत्यक्ष होते हैं और मूक दर्शक न होकर अपनी प्रतिक्रियाओं के प्रदर्शन के लिए स्वतंत्र होते हैं।

भाषण के अन्य प्रभेदीकरण का आधार श्रोताओं की संख्या है। श्रोताओं की संख्या सीमित इनी-गिनी से विपुल रैली जैसी भीड़ तक होती है। बीच में लघुसंख्यक मध्यसंख्यक, बहृत्संख्यक प्रभेद आते हैं। विशाल या विपुल संख्या में श्रोता राजनैतिक रैलियों में अपने राजनेता को सुनने के इच्छुक व्यक्ति होते हैं। बृहत् संख्या में श्रोता राजनेताओं तथा धर्मगुरुओं को सुनने आते हैं। मध्यम संख्या में सम्मेलन, विचारगोष्ठी, शैक्षिक समारोहों में दिखाई पड़ते हैं। लघुसंख्यक में संगोष्ठी, कक्षा आदि के व्याख्यान आते हैं। सीमितसंख्यक में छोटी विचारगोष्ठी, आदि में लोग एकत्र होते हैं। समिति की बैठकों में सीमित संख्या के सदस्यों के होने पर भी भाषा-व्यवहार वार्तालाप-प्ररूप का होता है क्योंकि सभी सदस्यों को बोलने का अधिकार होता हे।

जहाँ तक टोका-टाकी का प्रश्न है वह आयोजन की सामाजिक प्रतिष्ठा एवं मर्यादा तथा वक्ता-श्रोता सामाजिक संबंध में वक्ता की सामाजिक प्रस्थिति पर निर्भर है। यदि श्रोता की वक्ता के प्रति श्रद्धा है, वक्ता की आप्तता और ईमानदारी पर पूरा विश्वास है और श्रोता को संदेश से अपना हित होने की पक्की निष्ठा है तो भाषण के बीच बाधा नगण्य हो जाती है।

(3)–(4) **स्वालाप** : स्वालाप की स्थिति अतिविरल होती है। यहाँ कोई श्रोता नहीं होता है अतएव सामाजिक अन्योन्य क्रिया का प्रश्न ही नहीं उठता। किंतु जीवन में अनेक स्थितियाँ ऐसी आती हैं जब व्यक्ति मन ही मन बोलता है। किसी के कथन या कार्य पर प्रायः हम टिप्पणी (कमेन्ट) करते हैं, वार्तालाप की मर्यादा के कारण बोल तो नहीं सकते हैं पर मन में कमेन्ट अवश्य करते हैं। संस्कृत नाटकों में ऐसी स्थिति में स्वगत/स्वकथन (पात्र ऐसा बोलता है और विचार प्रकट करता है मानो और कोई सुन न रहे हों) का प्रयोग होता है।

स्व-वार्तालाप का प्रयोग फिल्मों में आंतरिक संघर्ष की अभिव्यक्ति के रूप में प्रायः दिखाई पड़ता है जहाँ व्यक्ति के दो स्वरूप - प्रायः एक अच्छा और एक बुरा - आमने-सामने आते हैं

और आपस में बात करते हैं। स्वभाषण की स्थिति में वक्ता किसी दृश्य या घटना को देख कर भावातिरेक से बोल बैठता है। विस्मयादिबोधक अथवा उद्गारात्मक अव्यय तो स्वभाषित हैं। दर्द से ओह् करते समय आप किसी श्रोता की उपस्थिति की अपेक्षा नहीं करते।

लिखित प्रोक्ति के प्रारूप : लिखित संदेश भी वार्तालाप, भाषण तथा स्वालाप के समान प्रभेदीकृत किया जा सकता है। पत्र वार्तालाप-प्रवण होते हैं क्योंकि पत्र के पाठक से पत्र का लेखक पत्रोत्तर की अपेक्षा रखता है। उपन्यास, कहानी आदि में वार्तालाप मिलते हैं, नाटक आदि तो वार्तालाप आधारित हैं ही - किंतु ये सब मौखिक वार्तालाप के प्रतिफलन हैं।

लिखित संदेश मुख्य रूप से भाषणवत् है जहाँ एक संदेश देने वाला और असंख्य संदेश लेने वाले। इसका प्रभेदीकरण प्रतिपाद्य विषय के आधार पर होता है। विषय के अनुसार उसमें तकनीकी शब्दावली, वाक्यरचना, तार्किक संरचना आदि होती है। विषयानुवर्तिनी भाषा-विकल्प चयन भाषा विज्ञान में 'रजिस्टर' नाम से विदित है।

स्वालापवत् लिखित रूप डायरी लेखन तथा कुछ मात्रा में संस्मरण होते हैं। कविता को प्रायः माना तो जाता है कि वह और के पढ़ने के लिए नहीं है, किंतु यथार्थतः ऐसा होता नहीं है।

13.5 प्रोक्ति विश्लेषण

प्रोक्ति की भाषाई अभिव्यक्ति, जो मूर्त रूप में हमें सुनाई या दिखाई पड़ती है, का भाषावैज्ञानिक विवेचन 'प्रोक्ति-विश्लेषण' कहा जाता है। प्रत्येक संरचना के समान प्रोक्ति-संरचना के भी एक से अधिक संरचक होते हैं, प्रत्येक का अपना प्रकार्य होता है, प्रत्येक उसे अपनी ओर से स्वरूप देते हैं और प्रत्येक ऐसे प्रतिबंध (कान्स्ट्रेन्ट) प्रस्तुत करते हैं जिससे भाषाई अभिव्यक्ति के असीमित विकल्पों को नियमित रूप से बद्ध होकर ही आना पड़ता है। ये प्रतिबंध (कांस्ट्रेन्ट्स) मूलतः परंपरा या रूढ़ द्वारा निर्धारित होते हैं और मूलतः सामाजिक-सांस्कृतिक होते हैं। नीचे इन संरचक/अभि-निर्धारकों का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

13.5.1 सामाजिक परिवेश

मनुष्य कभी शून्य में भाषा-व्यवहार नहीं करता है, वह किसी-न-किसी सामाजिक परिवेश में ही भाषा-व्यवहार करता है। ये सामाजिक परिवेश (डोमेन) भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। मुख्य परिवेश हैं :

(i) घर-परिवार का परिवेश
(ii) जीविका कार्य का परिवेश
(iii) सामाजिक-धार्मिक कृत्य कार्यों का परिवेश
(iv) शिक्षण प्रशिक्षण का परिवेश
(v) सामाजिक प्रबंधन का परिवेश - राजनैतिक परिवेश

(i) **घर परिवार का परिवेश :** मनुष्य का अधिकांश जीवन घर-परिवार में बीतता है, घर-परिवार एक जीवशास्त्रीय संस्था है, आवास-भोजन-आच्छादन - इन तीन मूल आवश्यकताओं का तथा शिशु पालन द्वारा स्पीशीज संवर्धन व्यवस्था का प्रबंधन यही करता है। भाषा तथा संस्कार बच्चा यहीं सीखता है। इस परिवेश की मुख्य भाषा-संप्रेषण विधा वार्तालाप है। गृहणियों का तो लगभग सारा समय इस परिवेश में बीतता है और वार्तालाप में उनका कौशल सुप्रसिद्ध है।

(ii) **जीविका कार्यक्षेत्र का परिवेश :** घर परिवार के बाद मनुष्य का अधिकांश समय जीविका कार्यक्षेत्र में बीतता है। क्या किसान, क्या मज़दूर, क्या अन्य सेवा संलग्न

व्यक्ति - सभी दिन के पर्याप्त समय में इनमें लगे रहते हैं। इस परिवेश में भी वार्तालाप संप्रेषण विधा का प्रयोग होता है। यह वार्तालाप कभी-कभी गंभीर व्यावसायिक होता है किंतु अधिकतर सामान्य सूचनापरक होता है अथवा शिथिल क्षणों में गप-शप, पर निंदा आदि।

(iii) **सामाजिक-धार्मिक कृत्य कार्यों का परिवेश :** धार्मिक कृत्य, पर्व-उत्सव, सामाजिक नृत्यगान समारोह, विवाह आदि संस्कार, तथा सामान्य आमोद-प्रमोद एवं खेलकूद के आयोजन - सभी इस परिवेश के अंग हैं। प्रवचन (भाषण), कथावाचन, यज्ञ-हवन में सामूहिक मंत्रोच्चार, कीर्तन-भजन, धर्म ग्रंथ पाठ आदि इस परिवेश के प्रमुख भाषा व्यवहार हैं। वार्तालाप का प्रयोग सामान्यतया प्रश्नोत्तर तथा चर्चा परिचर्चा में ही होता है।

(iv) **शिक्षण-प्रशिक्षण का परिवेश :** जीविका कार्य क्षेत्र में काम करने के लिए उस क्षेत्र में शिक्षण-प्रशिक्षण आवश्यक है। यह औपचारिक रूप से या तो प्रत्यक्षतः स्कूल, कालेजों आदि में होता है या ओपन स्कूल आदि के माध्यम से दूरस्थ पद्धति से होता है, अनौपचारिक रूप से परिवार तथा व्यावसायिक कार्य क्षेत्र के पूर्व प्रशिक्षित व्यक्तियों के द्वारा। इस परिवेश में व्याख्यान (भाषण) आजकल प्रमुख हैं। कौशल कार्यों में अनुदेशात्मक तथा अनुकरणात्मक भाषा व्यवहार प्रयुक्त होता है। उच्च शिक्षा में वाद-विवाद, संगोष्ठी, विचारगोष्ठी, सम्मेलन तथा दीक्षांत-सत्रारंभ-सत्रावसान आदि समारोहों में भाषा व्यवहार मिलता है। ये सभी भाषण-प्ररूप के हैं। वार्तालाप विधा प्रश्नोत्तर, चर्चा-परिचर्चा, मौखिकी परीक्षा आदि में मिलती है। अब सूचना-तकनीक तंत्र के विकास के साथ यह सब अन्य भाषा-चैनलों - रेडियो, टी.वी., कंप्यूटर-डिस्क तथा कंप्यूटर नेटवर्क से मिलने लगे हैं।

(v) **सामाजिक प्रबंधन परिवेश :** आरंभ से ही समाज के सदस्यों में से कुछ इसका दायित्व निभाते थे बाहरी तत्वों के आक्रमण से रक्षा, आंतरिक झगड़ों का निपटान, मर्यादा (नार्म) तोड़ने वालों को दंड, तथा मूलभूत सुविधाओं को मुहैया कराने की व्यवस्था हो। देश और राष्ट्र की संकल्पनाओं के साथ समाज विस्तृत हो गया और यह दायित्व राजा, राष्ट्राध्यक्ष, प्रधानमंत्री आदि पर आ गया। आजकल इस राजनैतिक संस्था पर रक्षा, आंतरिक सुरक्षा, विधि-दंड विधान, विधायिका तथा कुछ सेवाओं, जैसे - वित्तीय, परिवहन, संचार, स्वास्थ्य आदि का दायित्व पड़ा है। भाषाई व्यवहार की संप्रेषण विधा भाषण तथा समिति संचालन प्रमुख है। राष्ट्रपति का संदेश, प्रधानमंत्री का लाल किले पर भाषण, संसद में भाषण-परिभाषण, विभिन्न समितियों, सम्मेलनों, संगोष्ठियों आदि के भाषण इसी कोटि के हैं। वार्तालाप का रूप विदेशाध्यक्षों के साथ बातचीत तथा समितियों में चर्चा परिचर्चा ने ले लिया है।

13.5.2 सामाजिक संबंध (प्रस्थिति)

प्रत्येक समाज में सदस्यों के बीच उत्तराधर-क्रम अवश्य मिलता है। यह उत्तराधरक्रम सत्ता (सत्+ता= अस्तित्व का गुण) का होता है। सत्ताधारी अपने क्षेत्र में निर्णय ले सकता है, अपने से अधरक्रम को कार्य वितरण तथा कार्य पर्यवेक्षण (मॉनीटरिंग) कर सकता है और अपने से उत्तरक्रम के अनुसार कार्य संपादन तथा कार्य संचालन कर सकता है। परिवार-परिवेश में संयुक्त परिवारों में मुखिया प्रमुख सत्ताधारी होता है, जीविका क्षेत्र में आजकल सर्वोच्च प्रबंधक व्यक्ति अथवा मंडल सर्वोच्च सत्ताधारी होता है। धर्म-परिवेश में सभी धर्मों में गुरुओं-आचार्यों तथा मठाध्यक्षों में उत्तराधर क्रम है। राजनैतिक क्षेत्र में तो राष्ट्रपति से आरंभ होकर बड़ी सीमा तक प्रोटोकोल-सूची में उत्तराधर क्रम अंकित है। इस कारण प्रत्येक सामाजिक व्यवहार में दो या अधिक सदस्यों के बीच सत्ता (=प्रास्थिति status) प्रवर-अवरता विद्यमान होती है। किंतु प्रायः व्यक्ति भिन्न-भिन्न परिवेश में भिन्न-भिन्न प्रास्थिति रखता है। घर का

बड़ा भाई कार्यालय में अधीनस्थ भी हो सकता है। धार्मिक परिवेश में शंकराचार्य के सामने राजनैतिक क्षेत्र के सर्वोच्च राष्ट्रपति भी नतमस्तक हो सकते हैं। यह बात दूसरी है कि समाज में विभिन्न परिवेशों में समय-समय पर पारस्परिक भिन्न-भिन्न उत्तराधरक्रमी प्रतिष्ठा का भाव होता है। पहले गुरु शैक्षिक परिवेश के बाहर भी, अन्य परिवेशों में समुचित समादर पाता था, अब वह स्थान शायद राजनेताओं ने ले लिया है। यह सत्ता-विभिन्नता भाषा व्यवहार में स्पष्टतः प्रतिफलित होती है। समादरता का स्केल और घनिष्ठता-आत्मीयता का स्केल विशेषणों, क्रियाविशेषणों, संज्ञाओं तथा क्रियाओं के चयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

13.5.3 सामाजिक प्रयोजन

प्रत्येक वक्ता श्रोता के पास कुछ संदेश पहुँचाना चाहता है और यह चाहता है कि श्रोता संदेश को यथानुकूल ग्रहण करे और तत्पश्चात् कुछ करे। श्रोता क्या करे यह वक्ता का प्रयोजन (आशय) (intention) होता है। वक्ता की श्रोता से ये अपेक्षाएँ होती हैं :

(i) वक्ता से तथ्यात्मक जानकारी पाकर श्रोता अपनी संचित ज्ञानराशि को संवर्धित और पुनः संयोजित करे तथा फलस्वरूप उसके विचारों, दृष्टिकोणों, आस्थाओं तथा मूल्यों में वक्ता-अपेक्षित परिवर्तन आए।

(ii) श्रोता संदेश ग्रहण के बाद अपने मनोभावों, संवेगों, मनोवृत्तियों में वक्ता से वांछित परिवर्तन करे।

(iii) श्रोता संदेश ग्रहण के बाद अपने क्रिया-व्यवहार तथा कार्य संपादन रीति में परिवर्तन लाए।

वक्ता इन अपेक्षाओं के अनुसार अपने संदेश का रूप देता है इस कारण अभिव्यक्ति शैली पर इन प्रयोजनों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

13.5.4 सामाजिक भाषा-व्यवहार के पैटर्न

प्रोक्ति प्ररूप, जैसे वार्तालाप, भाषण और स्वालाप की चर्चा हम पहले कर आए हैं। कौन-सा पैटर्न अपनाया जाए यह सामाजिक परिवेश, सामाजिक प्रास्थिति (वक्ता-श्रोता की) तथा सामाजिक प्रयोजन बहुत कुछ निश्चित कर देता है।

उपरिलिखित निर्धारित तत्व मुख्यतया सामाजिक हैं। ये तत्व यह निर्धारित करते हैं कि अभिव्यक्ति की भाषा, बोली क्या हो (संदेश की भाषा स्वाभाविकतया वही होगी जो दोनों को बोधगम्य हो), अभिव्यक्ति किस भाषाई चैनल-लिखित या मौखिक - को अपनाए (व्यक्ति यदि सामने है तो वक्ता मौखिक चैनल ही अपनाएगा), और अभिव्यक्ति शैली क्या हो। इसका विवेचन आगे किया जा रहा है।

13.5.5 अभिव्यक्ति शैली

अभिव्यक्ति शैली तीन आयामों से बद्ध है :

(1) समादरता मापक्रम (स्केल)
(2) घनिष्ठता मापक्रम (स्केल)
(3) कोडटोन मापक्रम (स्केल)

(1) **समादरता स्केल :** इसकी पाँच कोटियाँ बनती हैं :

(i) " + + समादर" - अत्यधिक आदर। जेसे 'महामहिम' 1008 परम श्रर्द्धय...'
(ii) " + समादर" - सामान्य आदर सूचक भाषा। 'अप', 'हुजूर'।
(iii) " 0 समादर" - समभाव, जहाँ आदर-अनादर का प्रसंग ही नहीं होता।
(iv) " - समादर" - आदर का भाव नहीं, थोड़ा निरादर भी हो सकता है।

(v) " - - समादर" - स्पष्ट निरादर, कुछ मात्रा में तिरस्कार-उपेक्षा भी।

ये भाव संज्ञा, विशेषण, क्रिया शब्दों से, सर्वनाम से, विशिष्ट संबोधकों से तथा वाक्य शैली से प्रकट होते हैं। इनका समावेशी नाम 'honorific' है।

(2) **घनिष्ठता स्केल** : इसकी भी पाँच कोटियाँ हैं :

(i) अतिऔपचारिक (रूढ़) शैली - "महामहिम, पधारिए, पधारिए"

(ii) औपचारिक (शैली) - "मैं बहुत आभारी होऊँगा यदि आप आ जाएँ।"

(iii) सामान्य-परिचय (शैली) - कृपया भीतर आ जाइए।

(iv) घनिष्ठ-परिचय (शैली) - भीतर आ जाओ

(v) अतिघनिष्ठ (शैली) - अमाँ, भीतर क्यों नहीं आ रहे हो।

(3) **कोडटोन** : वास्तव में बहुत कम वाक्य उदासीन भाव से बोले या लिखे जाते हैं - प्रायः कुछ-न-कुछ हृदयगत भावनाएँ लिप्त रहती हैं। वार्तालाप की तो ये प्राण हैं। हाईम्स (1977) ने इसे संप्रेषण की 'key' कहा है और उनके अनुसार "टोन वह रीति या भावना है जिससे क्रिया की जा रही है।" मनबी (1978) ने 51 टोन सरणियाँ प्रतिपादित की हैं। उक्त ग्रंथ के पृष्ठ 50-51 में 'सुझाव' के बीस प्रकार के उपवाक्य दिए गए हैं, जिनमें 'suggestion' के साथ टोन [+personal] [+deferential] [+ encouraging) वाले दो उपवाक्य हैं :

"would you care to try the ...."

May I suggest (that you try) the ...."

13.6 पाठ

यह तकनीकी शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है - विस्तृत और संकुचित विस्तृत अर्थ में यह 'प्रोक्ति' के समकक्ष है। इस दृष्टि से कोई भी वार्तालाप, कोई भी भाषण, या कोई भी लिखित अभिव्यक्ति, चाहे छोटी या बड़ी, 'टेक्स्ट' है। "A text may be spoken or written, prose or verse, dialogue or monologue. It may be any thing from a single proverb to a whole play, from a momentary cry for help to an all day discussion in a committee."। किंतु अपने संकुचित अर्थ में प्रोक्ति या प्रोक्ति का वह अंश जिसका विश्लेषणात्मक विवेचन किया जाना है, पाठ (टेक्स्ट) है। पाठ का ऐसा विवेचन मुख्यतया भाषाई/ भाषावैज्ञानिक होता है। प्रोक्ति के सामाजिक निर्धारक तत्व किस प्रकार भाषा-रचना में प्रतिफलित हो रहे हैं यह दिखाना पाठ्य विश्लेषण है। अतएव पाठ अनेक वाक्यों के समुच्चय (एक वाक्यीय टेक्स्ट नोटिस, नारों, चेतावनियों, शीर्षकों आदि तक सीमित होते हैं) में सभी वाक्य किस प्रकार एकात्मकता की स्थिति को पैदा करते हैं, इसे स्पष्ट करता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों के झुंड को लीजिए :

1. खाली समय में किसान बैल की खूब देख-रेख करता था।
2. दोनों कड़ी मेहनत करते थे।
3. बेचारे बैल को भी रूखा-सूखा ही मिलता था।
4. उसके पास एक बैल था।
5. उसको अपने मालिक से कोई शिकायत न थी।
6. एक किसान था।
7. पर बैल बड़ा संतोषी था।
8. किसान के साथ रहते-रहते बैल बूढ़ा हो गया।
9. फिर भी किसान का गुजारा मुश्किल से चलता था।

10. वह जानता था कि उसका मालिक कंजूस नहीं है, और उसको बहुत प्यार करता है।

यदि इन वाक्यों को कोई इसी क्रम से पैराग्राफ - बद्ध कर दे तो कोई भी यह कह देगा कि यह पाठ (टेक्स्ट) नहीं है। अब यदि आप, भाषा पाठों के पूर्वानुभवों के आधार पर पुनर्व्यक्त करें तो सहजतः निम्नलिखित पैराग्राफ बन जाएगा :

"**एक किसान** था। उसके पास एक **बैल** था। **किसान** के साथ रहते-रहते **बैल** बूढ़ा हो गया। **दोनों कड़ी मेहनत** करते थे। **फिर भी किसान** का **गुजारा मुश्किल** से चलता था। बेचारे **बैल** को भी **रूखा-सूखा भूसा** ही मिलता था। **पर बैल** संतोषी था। **उसको अपने मालिक** से कोई शिकायत नहीं थी। **वह** जानता था कि **उसका** मालिक कंजूस नहीं है और **उसको** बहुत प्यार करता है। खाली समय में **किसान बैल** की खूब देखरेख करता था।"

अब जब आपने यह पैराग्राफ पुनःसर्जित कर लिया और उसे पाठ बना ही लिया, आप अंतर्वेक्षण कीजिए और पता लगाइए कि आपने ऐसी क्रमबद्धता क्यों की - आपको क्या-क्या संकेत वाक्यों से मिले थे, वाक्य-संयोजकों ने क्या-क्या इंगित किया, तार्किक क्रमसंयोजन ने आपको क्या सहायता पहुँचाई, अर्थ की दृष्टि से पूर्वापरक्रम स्थापन में शब्दों के पारस्परिक संबंधों ने किस प्रकार दिशादर्शन किया आदि-आदि। इन पर कई प्रकार से विचार कीजिए और फिर देखिए कि अगले अनुच्छेदों में वाक्यों की सुगुम्फितता के संबंध में बताया जा रहा है उसको आपने किस प्रकार सहजतः प्रयुक्त किया है।

13.7 संसक्ति (Cohesion)

हैलिडे-हसन ने अपनी पुस्तक 'Cohesion in English' (1976) में संसक्ति के संबंध में विस्तार से विवेचन किया है। प्रत्येक वाक्य अपने पूर्व के वाक्य/वाक्यों को और कभी-कभी बाद के वाक्य/वाक्यों को, किसी-न-किसी प्रकार श्रृंखलित करता है। इस श्रृंखलन-प्रक्रम का नाम संसक्ति है। संसक्ति दो प्रकार की होती है:

(1) व्याकरण-आधारित (व्याकरणिक)
(2) अर्थ-आधारित (आर्थी)

13.7.1 व्याकरण-आधारित संसक्ति

व्याकरण-आधारित संसक्ति-तत्वों में सबसे प्रमुख वाक्य-संयोजाक (conjunction) हैं (ऊपर के उद्धरण में 'फिर भी', 'पर', 'और')। इनकी शृंखलन प्रकृति से आप भलीभाँति परिचित हैं। इसके अतिरिक्त हैं :

(i) संकेतक (Reference)
(ii) स्थानापन्न शब्द (Substitute)
(iii) अध्याहार/लोप (Ellipsis)

(i) **संकेतक** : निम्न उद्धरण वाक्यों को देखिए :

"एक किसान था। **उसके** पास एक बैल था।"
"पर बैल संतोषी था। **उसको अपने** मालिक से कोई शिकायत नहीं थी।"

यहाँ 'उसके' और 'उसको' के माध्यम से परवर्ती वाक्य पूर्ववर्ती वाक्य से शृंखलित है। यह शृंखलन 'पूर्व संकेतक' (anaphora) द्वारा हो रहा है।

अब निम्न वाक्यों को देखिए :

"**इस तरह** से आप शीघ्र अच्छे हो सकते हैं। सुबह उठ कर एक गिलास पानी पी लें और पाँच किलोमीटर घूम आएँ।"

यहाँ पूर्ववर्ती वाक्य का 'इस तरह' परवर्ती वाक्य के सुबह पानी पीने और घूमने जाने का संकेतन करता है। यह शृंखलन 'पश्च संकेतक' (cataphora) कहा जाता है।

अब इन वाक्यों को देखिए :

"क्या तुमने वह किताब पढ़ ली?
नहीं सर, अभी नहीं पढ़ पाया।"

यहाँ 'वह' का संकेतन 'बहिःसंकेतक' (exaphora) है क्योंकि पाठ में इसका उल्लेख नहीं है।

(ii) **स्थानापन्न शब्द** : अंग्रेज़ी भाषा में यह संसक्ति-साधन बहुत प्रचलित है। उदाहरण देखिए :

(a) My axe is too blunt : I must get a sharp <u>one</u>.
(b) Does Mary sing? - No, but Mary <u>does</u>.
(c) Everyone is leaving . It seems <u>so</u> - It is <u>so</u>!

हिंदी में संज्ञा के लिए 'one' या क्रिया के लिए 'do' के प्रयोग नहीं मिलते हैं। हाँ, 'दोनों कड़ी मेहनत करते थे' में दोनों 'किसान' और 'बैल' का स्थानापन्न माना जा सकता है।

(iii) **अध्याहार** : यह प्रक्रिया हिंदी में भी बहुत सामान्य है। देखिए :

"आल्मारी में तीन लड्डू रखे हैं - एक उठा लो।
नहीं, मम्मी! मैं दो लूँगा।"

यहाँ 'एक' और 'दो' के आगे लड्डू का अध्याहार है।

13.7.2 अर्थ आधारित संसक्ति

अर्थ-आधारित संसक्ति में परवर्ती वाक्य पूरवर्ती से इसलिए शृंखलित होता है क्योंकि दोनों से एक ही शब्द - प्रायः संज्ञा शब्द - फ़ोकस में होता है। जैसे उद्धरण में 'किसान', 'बैल' (उद्धरण में ये अंकित हैं)। इसके अतिरिक्त पर्याय या पर्यायवत् शब्द शृंखलित करते हैं, जैसे उद्धरण में किसान के लिए 'मालिक'। आर्थी क्षेत्र के अन्य उच्चवर्गीय या मध्यवर्गीय (superordination और subordination) का भी प्रयोग प्रायः होता है।

किंतु इन दोनों से बढ़कर तार्किक संगतता शृंखलन का कार्य करती है। इसमें कार्य-कारण भाव प्रमुख है, जैसे 'मोहन कल स्कूल नहीं गया था। ज्वर आ गया था।'

13.8 पाठ विश्लेषण

पाठ विश्लेषण में चुने हुए प्रोक्ति खंड के संबंध में निम्नलिखित सूचनाएँ दी जाती हैं :

(1) पाठ्य किस सामाजिक परिवेश से संबंधित है और क्या चर्चा बिंदु (फ़ोकस-टापिक) है?

(2) पाठ्य में कौन-कौन पात्र हैं। जिस परिवेश से पाठ्य लिया गया उसमें उनकी क्या प्रास्थिति है? उनमें क्या उत्तराधर क्रम है? अन्य प्रास्थितियों तथा पारस्परिक संबंधों का उल्लेख करें।

(3) किस आशय की पूर्ति यह पाठ कर रहा है?

(4) यह किस प्रोक्ति-प्ररूप का है? वार्तालाप, भाषण आदि।

(5) किस भाषा/बोली, किस भाषा चैनल तथा किस अभिव्यक्ति शैली में पाठय प्रस्तुत है?

(6) टापिक और प्रास्थिति देखते हुए अभिव्यक्ति शैली में किस प्रकार समादरता, घनिष्ठता तथा कोड-टोनों को अभिव्यंजित किया गया है?

(7) प्रोक्ति प्ररूप का प्रस्तुति-वैशिष्ट्य किस प्रकार यहाँ दिखाया गया है, वार्तालाप में वार्तालाप वैशिष्ट्य बिंदु बताएँ - जैसे कब साथ-साथ बोलना हुआ और कम सभी चुप, कैसे विषय या आरंभ हुआ कैसे अंतः कैसे विषय का पुनरारंभ हुआ और कैसे पूर्व विषय को स्थगित, कैसे समर्थन किया गया कैसे खंडन, आदि आदि) इसी प्रकार भाषण शैली की सुगुम्फित पर प्रकाश डालें।

(8) पैराग्राफ किस प्रकार व्याकरणिक और आर्थी संसक्ति से जुड़े हुए हैं। उनमें विषयपरक संगति किस प्रकार विद्यमान है।

(9) तार्किक दृष्टि से पैराग्राफ में वाक्यों तथा पूरी बृहत् प्रोक्ति में पैराग्राफ का आसंजन स्पष्ट करें।

इस प्रकार इस पाठ में प्रोक्ति तथा पाठ्य के स्वरूप का तथा प्रोक्ति तथा पाठ्य के विश्लेषण का संक्षिप्त विवेचन किया गया है। इन विश्लेषण-कार्यों का अभ्यास बहुत आवश्यक है क्योंकि ये विश्लेषण आजकल के सूचना नेटवर्क में बहुत महत्वपूर्ण हैं। सूचना तंत्र से जुड़े सभी लोग - संवाददाता, संपादक, चर्चा-संयोजक, स्तंभ लेखक, अनुवादक आदि किसी-न-किसी स्तर पर अनजाने में अपनी प्रतिभा के अनुसार ये विश्लेषण करते आए हैं, किंतु अब सभी कार्यों के प्रशिक्षण की आवश्यकता है और उसकी विश्लेषण पद्धति स्फुटित रूप में आनी चाहिए। इग्नू विश्वविद्यालय के एम.ए. पाठ्यक्रम में यह पाठ इसी रिक्तता की पूर्ति का प्रयास है।

13.9 सांराश

प्रोक्तिकात्मक मतलब है बड़ी युक्ति। भाषा के सामान्य व्यवहार के सभी संदर्भ जैसे बातचीत, एक कहानी या पत्र प्रोक्ति कहलाएँगे। इन्हें प्रोक्ति कहने का एक आधार है, जब व्यापक संदर्भ में भाषा का प्रयोग होता है तो सनशक्ति आदि कुछ विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं जैसे सर्वनाम, प्रोक्ति का सबसे प्रमुख उदाहरण है। हम एक वाक्य में व्यक्ति का नामोल्लेख करते हैं तो उसके बाद सर्वनाम से उसका पुनः उल्लेख करते हैं। आमतौर पर यह माना जाता है कि वाक्य में भविष्य और विधेय दो अनावरण घटक हैं। लेकिन हम कई वाक्यों में कर्ता को छोड़ देते हैं जैसे 'यहाँ आओ' यह अध्येहार इसलिए प्रोक्ति में संभव है और अकेले वाक्य में अनावरण घटक छूट नहीं सकते। इस कारण प्रोक्ति के अध्ययन में हम भाषा के सामान्य नियम के अतिरिक्त भाषा की कुछ और विशेषताएँ देखते हैं और उनका उल्लेख करते हैं।

भाषा सामाजिक वस्तु है। सामाजिक संदर्भ में भाषा के प्रयोग की अपनी कई विशेषताएँ हैं। कौन किससे बात कर रहा है और वह किस संदर्भ में बात कर रहा है : या प्रश्नोत्तर चर्चा-परिचर्चा या रेडियो वार्ता आदि संदर्भ में किस तरह की भाषा का इस्तेमाल होगा इसकी चर्चा हम प्रोक्ति के संदर्भ में ही कर सकते हैं।

प्रोक्ति विश्लेषण सहज भाषा के नमूने को 'पाठ' मानता है। यह पाठ एक छोटा-सा वाक्य भी हो सकता है या एक महाकाव्य भी। उस पाठ को संप्रेषण का आधार मानकर हम उसकी रचना का विश्लेषण करते हैं जिसे पाठ विश्लेषण कहा जाता है। पाठ विश्लेषण उस पाठ के परिवेश उसकी रचना कथ्य की विशेषताएँ और उस पाठ की भाषा शैली आदि की समग्र रूप से चर्चा करता है। इस विश्लेषण से हम भाषा के प्रयोग की विशेषताओं को जान सकते हैं जो अच्छे लेखक के लिए आवश्यक है। प्रोक्ति के अध्ययन से ही हम भाषा की प्रकार्यात्मता, सर्जनशीलता और का सही मूल्यांकन कर सकते हैं।

13.9 अभ्यास प्रश्न

1. **निबंधात्मक प्रश्न**
   (1) प्रोक्ति की संकल्पना को सपष्ट करते हुए प्रोक्ति विश्लेषण का महत्व समझाइए।
   (2)

2. **टिप्पणी लिखिए**
   (1) भाषा के प्रकार्य क्या हैं
   (2) प्रोक्ति विश्लेषण में समाज का महत्व

इस खंड के लिए उपयोगी संदर्भ ग्रंथ

Bloomfield, L. (1933) : *Language*, Nyork, Holt, Rienhart and Winstion.

Halliday, (1976) : *System and Function in Language* (Selected Papers), G.R. Kress (Ed.), Oxford University Press.

S.A. Shane (1973) : *Generative Phonology*, Prentice Hall INC, London.

जगन्नाथन वी.रा. (1981) : *प्रयोग ओर प्रयोग*, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव एवं रामनाथ सहाय (1976) : संपादित : *हिंदी का सामाजिक संदर्भ*, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।

रवींद्रनाथ श्रीवास्तव (1995) : *हिंदी भाषा संरचना के विविध आयाम*, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

सुरेश कुमार (1987) : *सम्प्रेषणपरक व्याकरण : सिद्धांत और स्वरूप*, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा। विशेषतः रमानाथ सहाय - '*संप्रेषणपरक व्याकरण : प्रकृति और स्वरूप* (पृष्ठ 145-172)।

कैलाश चंद्र भाटिया और रचना भाटिया ((2001) : *प्रयोजनमूलक व्यावहारिक हिंदी भाषा*, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, *हिंदी संरचना, ई.एच.डी.-7.*

भोलानाथ तिवारी (1989) : *हिंदी भाषा की ध्वनि संरचना*, साहित्य सहकार, दिल्ली।

भोलानाथ तिवारी (1974) : *हिंदी भाषा की संरचना*, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

सूरजभान सिंह (1991) : *हिंदी भाषा : संदर्भ और संरचना*, साहित्य सहकार, 29/62-बी, गली-1, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-110 032.

सूरजभान सिंह (1985, 1992) : *हिंदी का वाक्यात्मक व्याकरण*, साहित्य सहकार, ई/।10-4, कृष्णनगर, दिल्ली-110 005.